# सृष्टि, ईश्वर और धर्म

अलहसनैन इस्लामी नैटवर्क

## सृष्टिकर्ता अनिवार्य है।

प्राचीन काल से ही मनुष्य के मन में यह प्रश्न उठता रहा है कि सृष्टि का आरंभ कब हुआ,

कैसे हुआ, क्या यह संभव है कि मनुष्य कभी यह समझ सके कि चाँद, सितारे, आकाशगंगाएं, पुच्छलतारे, पृथ्वी, पर्वत, उसकी ऊँची ऊँची चोटियाँ, जंगल, कीड़े-मकोड़े, पशु, पक्षी, मनुष्य, जीव-जन्तु यह सब कहाँ से आए और कैसे बने?

हमने और आपने हो सकता है न सोचा हो किन्तु हज़ारों वर्षों से इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों ने सोचा और यहीं से धर्म का जन्म हुआ।

हम ब्रहमाण्ड की रचना की जटिल बहस का उल्लेख नहीं करेंगे

क्योंकि बिग-बैंग, जो इस सृष्टि की रचना का कारण बताया जाता है, उस पर भी वैज्ञानिकों ने बहुत से प्रश्न उठाए हैं।

यहाँ बस केवल एक प्रश्न है जो हर काल में प्रायः हर मनुष्य के मन में उठता रहा है कि क्या कोई वस्तु बिना किसी बनाने वाले के बन सकती है?

एक अरब ग्रामीण से पूछा गया कि तुमने अपने ईश्वर को कैसे पहचाना? तो उसने उत्तर दिया कि ऊँट की मेंगनियाँ, ऊँट का प्रमाण हैं, पद-चिन्ह किसी पथिक का प्रमाण हैं,

तो क्या इतना बड़ा ब्रह्माण्ड, यह आकाश, और कई परतों में पृथ्वी, किसी रचयिता का प्रमाण नहीं हो सकती!

यह अत्यधिक सादे शब्दों में ईश्वर के अस्तित्व के बारे में दिया जाने वाला वह प्रमाण है जिस पर बड़े-बड़े दार्शनिकों ने बहस की है और अपने विचार व्यक्त किए हैं,

किन्तु अधिकांश लोगों ने ब्रह्माण्ड में मौजूद व्यवस्था को, ईश्वर के अस्तित्व का सबसे बड़ा प्रमाण माना है।

अल्लामा हिल्ली एक बहुत प्रसिद्ध शीया बुद्धिजीवी थे। उनके काल में एक नास्तिक बहुत प्रसिद्ध हुआ। वह बड़े बड़े आस्तिकों को बहस में हरा देता था, उसने अल्लामा हिल्ली को भी चुनौती दी।

बहस के लिए एक दिन निर्धारित हुआ और नगरवासी निर्धारित समय और निर्धारित स्थान पर इकट्ठा हो गए।

वह नास्तिक भी समय पर पहुंच गया, किन्तु अल्लामा हिल्ली का कहीं पता नहीं था। काफ़ी समय बीत गया लोग बड़ी व्याकुलता से अल्लामा हिल्ली की प्रतीक्षा कर रहे थे

कि अचानक अल्लामा हिल्ली आते दिखाई दिए। उस नास्तिक ने अल्लामा हिल्ली से विलंब का कारण पूछा तो उन्होंने विलंब के लिए क्षमा मांगने के पश्चात

कहा कि वास्तव में मैं सही समय पर आ जाता, किन्तु हुआ यह कि मार्ग में जो नदी है

उसका पुल टूटा हुआ था और मैं तैर कर नदी पार नहीं कर सकता था, इसलिए मैं परेशान होकर बैठा हुआ था

कि अचानक मैंने देखा कि नदी के किनारे लगा पेड़ कट कर गिर गया और फिर उसमें से तख़्ते कटने लगे और फिर अचानक कहीं से कीलें आईं और उन्होंने तख़्तों को आपस में जोड़ दिया

और फिर मैंने देखा तो एक नाव बनकर तैयार थी। मैं जल्दी से उसमें बैठ गया और नदी पार करके यहाँ आ गया।

अल्लामा हिल्ली की यह बात सुनकर नास्तिक हंसने लगा और उसने वहाँ उपस्थित लोगों से कहाः "मैं किसी पागल से वाद-विवाद नहीं कर सकता, भला यह कैसे हो सकता है?

कहीं नाव, ऐसे बनती है?" यह सुनकर अल्लामा हिल्ली ने कहाः "हे लोगो! तुम फ़ैसला करो। मैं पागल हूँ या यह, जो यह स्वीकार करने पर तैयार नहीं है

कि एक नाव बिना किसी बनाने वाले के बन सकती है,

किन्तु इसका कहना है कि यह पूरा संसार अपने ढेरों आश्चर्यों और इतनी सूक्ष्म व्यवस्था के साथ स्वयं ही अस्तित्व में आ गया है"। नास्तिक ने अपनी हार मान ली और उठकर चला गया।

मानव इतिहास के आरंभ से ही ईश्वर को मानने वाले सदैव अधिक रहे हैं अर्थात अधिकांश लोग यह मानते हैं कि इस संसार का कोई रचयिता है, अब वह कौन है? कैसा है?

और उसने क्या कहा है? इस बारे में लोगों में मतभेद है किन्तु यही सच है कि यदि सही अर्थ में कोई धर्म है तो फिर उसका उद्देश्य भी मनुष्य को ईश्वर तक पहुँचाना होता है।

वैसे यह बिन्दु भी स्पष्ट रहे कि ईश्वर और धर्म को मानने में ही भलाई हैं,

क्योंकि आप दो ऐसे व्यक्तियों के बारे में सोचें कि जिनमें से एक धर्म और ईश्वर को मानता है और दूसरा नहीं मानता।

उदाहरण स्वरूप दो व्यक्ति किसी ऐसे नगर की ओर जा रहे हैं जहाँ के बारे में दोनों को कुछ नहीं मालूम है।

मार्ग में उन्हें एक अन्य व्यक्ति मिलता है जो उनसे कहता है कि जिस नगर में तुम दोनों जा रहे हो वहाँ खाने पीने को कुछ नहीं मिलेगा,

इसलिए उचित होगा कि वहाँ के लिए थोड़ा भोजन और पानी रख लो तो ऐसी स्थिति में बुद्धि क्या कहती है?

बुद्धि यही कहती है कि वहाँ के लिए कुछ खाना पानी रख लिया जाए, क्योंकि यदि वह सही कह रहा होगा तो मरने का ख़तरा टल जाएगा और यदि झूठ बोल रहा होगा तो कोई हानि नहीं होगी।

अब इस कल्पना के दृष्टिगत एक व्यक्ति ने खाना पानी रखा लिया किन्तु दूसरे ने कहा कि इस व्यक्ति ने मज़ाक़ किया है,

या यह कि झूठ बोल रहा था, या यह कि देखने में भरोसे का आदमी नहीं लग रहा था, यह सोच कर उसने कुछ साथ नहीं लिया। नगर आया तो उसने देखा कि खाना पानी सब कुछ था,

जो व्यक्ति खाना पानी साथ लाया था उसने उसे फेंक दिया, बस सब कुछ ठीक हो गया, किन्तु दूसरी स्थिति में सोचें कि ये दोनो यात्री उस नगर में जब पहुंचे तो

देखा कि वहाँ कुछ भी नहीं था तो अब जिसने अपने साथ खाना पानी रख लिया था, उसकी तो जान बच गई किन्तु जिसने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया था वह भूख और प्यास से मर गया।

इसिलए बुद्धि हमें यह सिखाती है कि यदि ख़तरा या लाभ बहुत बड़ा हो तो उसकी सूचना देने वाला चाहे जैसा हो, बुद्धि कहती है कि उसके लिए कुछ प्रबंध अवश्य करना चाहिए।

यदि दस ग्लास पानी हमारे सामने रखा है और कोई कहता है कि किसी एक में विष है तो बुद्धि कहती है कि किसी भी ग्लास का पानी न पिया जाए।

इस संसार में बहुत से लोग आए जो विदित रूप से अच्छे मनुष्य थे, लोगों की सहायता करते थे, अच्छे कार्य करते थे, लोकप्रिय थे, किन्तु वे कहा करते थे कि हम ईश्वरीय दूत हैं,

इस संसार का एक रचयिता है, मरने के बाद एक अन्य लोक है जहाँ कर्मों का हिसाब किताब होगा और अच्छे कार्य करने वालों को स्वर्ग और बुरे कार्य करने वालों को नरक में भेजा जाएगा।

तो फिर इस संदर्भ में हमारी बुद्धि क्या कहती है? यदि हम केवल बुद्धि की बात मानें तो होना यह चाहिए कि हम यह सोचें कि

यदि इन लोगों ने सही कहा होगा तो हम स्वर्ग में जाएंगे और नरक में जाने से बच जाएंगे किन्तु यदि उन लोगों ने ग़लत कहा होगा तो मरने के बाद मिट्टी में मिल जाएंगे और परलोक नाम का कोई लोक नहीं होगा और हमें कोई हानि भी नहीं होगी।

हमने अपने जीवन में जो अच्छे कर्म किए उसके कारण लोग हमें याद रखेंगे।

इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस सृष्टि का कोई रचयिता है, क्योंकि कोई भी वस्तु बिना बनाने वाले के नहीं बनती। बनाने वाले को अधिकांश लोग मानते हैं,

उसे पहचानने के लिए विभिन्न लोगों को भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाना पड़ता है। धर्मों में विविधता का कारण यही है।

बुद्धि कहती है कि ईश्वर और परलोक की बात करने वालों पर विश्वास किया जाए, क्योंकि अविश्वास की स्थिति में यदि उनकी बातें सही हुईं तो बहुत बड़ी हानि होगी।

## धर्म क्या है?

धर्म क्या है? धर्म वास्तव में कुछ लोगों के विश्वासों और ईश्वर की ओर से मानव समाज के लिए संकलित शिक्षाओं को कहा जाता है और इसे एक दृष्टि से कई प्रकारों में बांटा जा सकता है।

उदाहरण स्वरूप प्राचीन व विकसित धर्म। यदि इतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो धर्म व मत लाखों करोड़ों प्रकार के हैं

किंतु हम धर्म के प्रकारों पर चर्चा नहीं करना चाहते बल्कि हम स्वयं धर्म पर संक्षिप्त सी चर्चा करेंगे।

धर्म या दीन का अर्थ आज्ञापालन, पारितोषिक आदि बताया गया है किंतु दीन अथवा धर्म की परिभाषा हैः

संसार के रचयिता और उसके आदेशों पर विश्वास व आस्था रखना। अर्थात धर्म एक प्रक्रिया का नाम है

जिसके अंतर्गत धर्म का मानने वाला इस सृष्टि के रचयिता के अस्तित्व को मानते हुए उसके आदेशों का पालन करता है।

इस आधार पर जो लोग किसी रचयिता के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते और इस सृष्टि के अस्तित्व को संयोगवश घटने वाली किसी घटना का परिणाम मानते हैं।

उनके विचार में कोई प्रलय और परलोक नहीं है बल्कि संसार एक दिन समाप्त हो जाएगा और उसी के साथ सारा अस्तित्व विलुप्त हो जाएगा। इस प्रकार के लोगों को नास्तिक कहा जाता है।

जो लोग इस सृष्टि के रचयिता को मानते हैं उन्हें धर्मिक और आस्तिक कहा जाता है अब चाहे उनकी अन्य आस्थाओं में कुछ अनुचित बातें भी क्यों न शामिल हों।

इस प्रकार संसार में पाए जाने वाले धर्मों को दो क़िस्मों में बांटा जा सकता है। सत्य व असत्य धर्म। सच्चा धर्म वह है

जिसके सिद्धांत तार्किक और वास्तविकताओं से मेल खाते हों और जिन कार्यों का आदेश दिया गया है उसके लिए उचित व तार्किक प्रमाण मौजूद हों।

अर्थात धर्म की जो परिभाषा यहां बताई गई उसके आधर पर हर वो प्रक्रिया जिसमें मनुष्य ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए कुछ संस्कार करता है उसे धर्म कहा जाता है

किंतु यह निश्चित नहीं है कि वो संस्कार सही हो क्योंकि धर्म के पालन का उद्देश्य इस सृष्टि के रचयिता को प्रसन्न करना होता है

और यह नहीं हो सकता कि वो ईश्वर परस्पर विरोधी कामों से प्रसन्न हो।

उदाहरणस्वरूप यह संभव नहीं है कि ईश्वर दूसरों को लूटने वाले से भी प्रसन्न हो और दूसरों की सहायता करने वाले से भी। झूठ से भी प्रसन्न हो और सत्य से भी।

वो यह तो झूठ से प्रसन्न होगा या फिर सत्य से। इस लिए हम यह नहीं कह सकते कि इस संसार में जितने भी धर्म हैं सब ईश्वर तक पहुंचाते हैं

और मनुष्य चाहे जिस धर्म का माने अंततः ईश्वर तक पहुंच ही जाएगा क्योंकि किसी भी गंतव्य तक पहुंचने के लिए कुछ निर्धारित मार्ग होते हैं

इस लिए यदि कोई मनुष्य ईश्वर तक पहुंचना चाहता है तो उसके लिए आवश्यक है कि वो सही मार्ग की खोज करे।

इस बात का पता लगाने का प्रयास करे कि कौन से संस्कार और कौन से कर्म ईश्वर को प्रसन्न करते हैं और कौन से कामों से वो अप्रसन्न होता है।

अब प्रश्न यह है कि हमें इस बात का पता कैसे चले कि ईश्वर कौन से कामों से प्रसन्न होता है और कौन से कामों से अप्रसन्न होता है? धर्म हमें यही बताता है।

मनुष्यों में विभिन्न प्रकार की विचारधाराएं पायी जाती हैं किंतु भौतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से उन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है।

अर्थात कुछ विचारधाराएं ऐसी होती हैं जिनमें इस भौतिक संसार से परे भी किसी लोक व संसार के अस्तित्व को माना गया है जबकि कुछ विचारधाराएं ऐसी होती हैं

जिनमें केवल इसी संसार को सब कुछ समझा गया है। इस प्रकार से विश्व की समस्त विचारधाराएं दो प्रकार की होती हैं। ईश्वरीय विचारधारा और सांसारिक या भौतिक विचारधारा।

भौतिक विचारधारा रखने वालों को भौतिकतावादी, नास्तिक आदि जैसे नामों से याद किया जाता है जबकि आधुनिक युग में उन्हें मैटीरियालिस्ट भी कहा जाने लगा है।

भौतिकवाद में भी विभिन्न प्रकार के मत पाए जाते हैं किंतु हमारे युग में सबसे अधिक प्रसिद्ध मत है डायलेक्टिक मटीरियलिज़्म जो मार्क्सिस्ट विचारधारा का आधार है।

विभिन्न धर्मों के अस्तित्व में आने के बारे में बुद्धिजीवियों और धर्मों के इतिहास के जानकारों तथा समाज शास्त्रियों के मध्य मतभेद पाए जाते हैं

किंतु इस्लामी दृष्टिकोण से जो बातें समझ में आती हैं वह यह हैं कि धर्म के अस्तित्व में आने का इतिहास, मनुष्य के अस्तित्व के साथ ही आरंभ हुआ है।

पृथ्वी पर आने वाले सर्वप्रथम मनुष्य हज़रत आदम ईश्वरीय दूत और एकेश्वरवाद के प्रचारक थे तथा अनेकेश्वरवाद सच्चे धर्म का बिगड़ा हुआ रूप है।

अर्थात कुछ लोगों ने स्वार्थ और राजा-महाराजाओं को प्रसन्न करने के लिए ईश्वरीय धर्मों में कुछ बातें मिला दीं या कुछ बातों को कम कर दिया।

**एकेश्वरवादी धर्म जो वास्तव में सच्चे धर्म हैं तीन आस्थाओं में समान दिखाई देते हैं।**

१ एक ईश्वर में विश्वास

२ परलोक में मनुष्य के अनंत जीवन पर विश्वास

३ इस संसार में किए गए कर्मों के प्रतिफल तथा मानवजाति के मार्गदर्शन के लिए ईश्वरीय दूतों के आगमन पर विश्वास

यह तीन सिद्धांत वास्तव में हर मनुष्य के इस प्रकार के प्रश्नों के आरंभिक उत्तर हैं, सृष्टि का आरंभ कब हुआ? जीवन का अंत क्या होगा?

और किस मार्ग पर चलकर सही रूप से जीवन व्यतीत करना सीखा जा सकता है। इस प्रकार ईश्वरीय संदेश द्वारा मनुष्य को जीवनयापन का जो कार्यक्रम प्राप्त होता है।

इसी को धर्म कहते हैं जिसका आधार ईश्वरीय विचारधारा होती है।

मुख्य सिद्धांत व आस्था के लिए बहुत सी चीज़ों की आवश्यकता होती है

जो एक साथ मिलकर किसी मत अथवा विचारधारा को अस्तित्व प्रदान करती हैं और इन्हीं बातों में मतभेद के कारण ही विभिन्न प्रकार के धर्मों और मतों का जन्म होता है।

उदाहरणस्वरूप कुछ ईश्वरीय दूतों के बारे में मतभेद और ईश्वरीय किताब के निर्धारण में अलग-अलग मत ही यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म के मध्य मतभेद का मूल कारण है।

जिसके आधार पर शिक्षाओं की दृष्टि से इन तीनों धर्मों में बहुत अंतर हो गया है। उदाहरण स्वरूप ईसाई त्रीश्वर को मानते हैं जो उनकी एकेश्वरवादी विचारधारा से मेल नहीं खाता।

यद्यपि ईसाई धर्म में विभिन्न प्रकार से इस विश्वास का औचित्य दर्शाने का प्रयास किया गया है।

इसी प्रकार इस्लाम में पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैहे व आलेही व सल्लम के उत्तराधिकारी के निर्धारण की शैली के बारे में मतभेद।

अर्थात यह कि पैग़म्बरे इस्लाम के उत्तराधिकारी का निर्धारण ईश्वर करता है या जनता। शीया व सुन्नी मुसलमानों के मध्य मतभेद का मुख्य व मूल कारण है।

तो फिर निष्कर्ष यह निकलता है कि समस्त ईश्वरीय धर्मों में एकेश्वरवाद, ईश्वरीय दूत और प्रलय मूल सिद्धांत व मान्यता के रूप में स्वीकार किया जाता है

किंतु इन सिद्धांतों की व्याख्या के परिणाम में जो अन्य विश्वास व आस्थाएं सामने आई हैं उन्हें मुख्य शिक्षा व सिद्धांत का भाग मात्र कहा जा सकता है।

ईश्वर को मानने वाले विभिन्न धर्मों में विविधता और मतभेद का कारण यही है।

**इस चर्चा के मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं,**

ईश्वर तक पहुंचने के लिए सही मार्ग का चयन आवश्यक है क्योंकि ईश्वर दो परस्पर विरोधी कामों से प्रसन्न नहीं हो सकता।

इस लिए इस बात का पता लगाना आवश्यक है कि ईश्वर कौन से कामों से प्रश्न होता है और कौन से कामों से अप्रसन्न और यह बात हमें वही बता सकता है जो उसकी ओर से आया हो।

ईश्वर तक पहुंचने का सही मार्ग वही होता है जो तर्क और बुद्धि पर खरा उतरे।

ईश्वर तक ले जाने वाले धर्मों में प्रायः मूल सिद्धांत एक समान होते हैं किंतु कुछ नियमों की व्याख्या के बारे में विभिन्न मत ईश्वरीय धर्मों की विभिन्नता कारण हैं।

## जिज्ञासा

मनुष्य में स्वाभाविक रूप से वास्तविकता की खोज और सत्य तक पहुंचने की इच्छा होती है जो बालावस्था से ही उसमें प्रकट होने लगती है।

यही भावना जिसे जिज्ञासा भी कहा जाता है मनुष्य को उन विषयों के बारे में भी विचार व अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है

जो धर्म के रूप और नाम से उसके सामने पेश किए जाते हैं।

उदाहरण स्वरूप इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए मनुष्य विचार व अध्ययन करने पर प्रोत्साहित हो सकता है जैसेः क्या किसी ऐसी शक्ति का अस्तित्व है

जिसका आभास नहीं किया जा सकता और जो भौतिक विशेषताओं से परे है?

## क्या लोक-परलोक के मध्य कोई संबंध है?

यदि कोई संबंध है तो क्या कोई शक्ति ऐसी भी है जिसे इंद्रियों से न समझा जा सकता हो किंतु उसीने इस ब्रह्मांड की रचना की है?

क्या मनुष्य का अस्तित्व इसी भौतिक शरीर तक और उसका जीवन इसी सांसारिक जीवन तक सीमित है या फिर कोई अन्य जीवन भी है?

यदि कोई अन्य जीवन है तो क्या उस जीवन और सांसारिक जीवन के मध्य कोई संबंध है?

यदि कोई संबंध है तो फिर किस प्रकार के सांसारिक काम परलोक और दूसरे जीवन में लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं?

जीवनयापन के सही नियम और शैली की पहचान के लिए कौन सा मार्ग अपनाया जाए कि जिससे मनुष्य लोक-परलोक दोनों में सफलता तक पहुंचे?

वह कार्यक्रम क्या है जो किसी मनुष्य को दोनों लोकों में सफल बना सकता है?

इस प्रकार मनुष्य के भीतर वास्तविकता को जानने की जो स्वाभाविक जिज्ञासा होती है।

वह उसे हर प्रकार की वास्तविकता जान लेने और उसके बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करती है। धर्म के बारे में जानकारी भी इससे अपवाद नहीं है।

मनुष्य में स्वाभाविक रूप से सत्य व वास्तविकता की खोज की जो भावना होती है, उसके अतिरिक्त भी बहुत से कारक होते हैं

जो मनुष्य को अध्ययन व वास्तविकता की खोज के लिए प्रेरित करते हैं।

वास्तविकता की खोज के अपने सिद्धांत होते हैं। सबसे पहले तो जिस विषय के बारे में जानकारी प्राप्त करनी होती है उससे संबंधित कई ऐसे विषय होते हैं जिनकी जानकारी आवश्यक होती है।

क्योंकि बहुत सी चीज़ें ऐसी होती हैं जो किसी विशेष जानकारी पर ही निर्भर होती हैं।

उदाहरणस्वरूप विभिन्न प्रकार की भौतिक व सांसारिक सुविधाओं के लिए वैज्ञानिक शोध आवश्यक होते हैं।

आज विभिन्न प्रकार की सुविधाएं जो इस युग में हमें उपलब्ध हैं वो इसी प्रकार के वैज्ञानिक प्रयास का परिणाम हैं।

दूसरे शब्दों में मनुष्य जिस वस्तु को आवश्यक समझता है उस तक पहुंचने के लिए प्रयास करता है और इस मार्ग में आवश्यक साधन भी जुटाता है

तो फिर यदि यह विश्वास कर लिया जाए कि धर्म भी मनुष्य के हितों की रक्षा कर सकता है और उसे बहुत से ख़तरों से बचा सकता है तो मनुष्य में अपने हितों की रक्षा और ख़तरों से बचने की जो भावना होती है

वह उसे धर्म के बारे में अध्ययन व शोध पर प्रेरित करेगी। इस प्रकार यह भावना धर्म के बारे में अध्ययन का एक कारक मानी जाती है।

अर्थात यदि कोई सही अर्थ में यह समझने लगे कि धर्म भी एक ऐसी चीज़ है जो उसे लाभ पहुंचा सकता है

और यदि उसे छोड़ दिया जाए तो उसे हानि हो सकती है तो फिर स्वाभाविक रूप से उसे धर्म के बारे में जानकारी जुटानी चाहिए।

क्योंकि हितों की रक्षा और हानियों से बचना मनुष्य के स्वभाव व प्रवृत्ति का भाग है। किंतु जानकारियों के इतने बड़े समूह में लोगों के पास मौजूद कम समय के कारण ऐसा हो सकता है कि बहुत से लोग अध्ययन के लिए ऐसे विषयों का चयन करें जिनका परिणाम सरलता और शीघ्रता से सामने आ जाए और धर्म के

बारे में यह सोचकर की इस संदर्भ में अध्ययन कठिन भोगा और उसके परिणाम महत्वहीन होंगे लोग धर्म के बारे में अध्ययन न करें।

इस दृष्टि से यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि धर्म का बहुत अधिक महत्व है और यह कि धर्म के बारे में अध्ययन से अधक महत्व किसी और अध्ययन का नहीं है।

यहां पर हम यह भी स्पष्ट करना चाहेंगे कि मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि ईश्वर में विश्वास एक स्वाभाविक इच्छा है जो किसी अन्य इच्छा से संबंधित नहीं है।

इस रुझान को धर्म-बोध कहा जाता है और इसे जिज्ञासा, भलाई और सुंदरता जैसे बोधों के साथ मानव आत्मा का चौथा पहलू समझा जाता है।

बुद्धिजीवी ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर कहते हैं कि ईश्वर की उपासना सदैव ही किसी न किसी रूप में मानव समाज में मौजूद रही है और यही तथ्य धर्म के स्वाभाविक व सदैव से होने का ठोस प्रमाण है। (जारी है)

# परिपूर्णता का मार्ग

भले इंसान की भांति जीवन व्यतीत करने के लिए सही आयडियालोजी व विचारधारा आवश्यक है। इस बात को समझने के लिए तीन बिंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक हैः

१, मनुष्य परिपूर्णता की खोज करने वाला प्राणी है।

२, मनुष्य परिपूर्णता तक कुछ ऐसे कामों द्वारा पहुंचता है जो बुद्धि से मेल खाते हों और जिनका काना या न करना उसके अधिकार में हो।

३, बुद्धि के व्यवहारिक आदेश विशेष प्रकार की वैचारिक पहचान के अंतर्गत ही संभव होते हैं

जिनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण सृष्टि के आरंभ अर्थात एकेश्वरवाद की पहचान,

जीवन के अंत अर्थात प्रलय में सफलता तक पहुंचाने वाले मार्ग की पहचान। दूसरे शब्दों में सृष्टि की पहचान, मनुष्य की पहचान और मार्ग की पहचान।

अब आइए इन तीनों के बारे में विस्तार से बात करते हैः

जो भी अपनी भावनाओं और स्वाभाविक इच्छाओं पर विचार करेगा उसे पता चल जाएगा कि इस प्रकार की बहुत सी इच्छाओं का कारण वास्तव में परिपूर्णता तक पहुंचने की भावना होती है।

मूल रूप से कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि उसके अस्तित्व में किसी प्रकार की कमी रहे। वह सदैव यह प्रयास करता है कि

जितना हो सके अपनी कमियों और बुराइयों को दूर करे ताकि परिपूर्णता तक पहुंच सके और जब तक यह कमियां उसमें रहती हैं वह उन्हें दूसरों से छिपाने का प्रयास रकता है।

यह इच्छा यदि सही दिशा पा जाए तो फिर भौतिक व आध्यात्मिक विकास व उन्नति का कारण बनती है किंतु यदि विशेष परिस्थितियों के कारण अपने सही

मार्ग से भटक जाए तो फिर अहंकार, दिखावा, आत्ममुग्धता आदि जैसे अवगुणों का कारण बन जाती है।

बहरहाल परिपूर्णता व अच्छाई की ओर रुजहान मनुष्य के अस्तित्व में नहिति एक स्वाभाविक कारक है जिसके चिन्हों को प्रायः बहुत ध्यान देकर समझा जा सकता है किंतु यदि थोड़ा से चिंतन-मनन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका मुख्य स्रो मनुष्य में परिपूर्णता की खोज है।

पेड़-पौधों की परिपूर्णता परिस्थितियों पर निर्भर होती है और जब उसके लिए आवश्यक परिस्थितियां बन जाती हैं तो फिर बिना किसी इच्छा व अधिकार के पेड़-पौधे उगते और बढ़ते हैं।

कोई भी वृक्ष न तो अपनी इच्छा से बढ़ता है और न फल देता है क्योंकि उसके पास बोध व आभास नहीं होता।

अलबत्ता पशुओं के बारे में स्थिति थोड़ी भिन्न होती है।

उनमें इरादा और चयन की सीमित शक्ति होती है जो वास्तव में उनकी प्राकृतिक इच्छाओं से प्रेरित होती है।

पशुओं की सीमित बोध शक्ति उनके शरीर के इन्द्रीय ज्ञान पर निर्भर होती है।

किंतु मनुष्य को अपने इरादे और एक प्राणी होने के नाते उसे जो योग्यताएं प्राप्त हैं उनके अलावा आत्मिक रूप से भी दो विशिष्टताएं प्राप्त हैं।

एक ओर स्वाभाविक आवश्यकताओं के दायरे में उसकी स्वाभाविक इच्छाएं सीमित नहीं होतीं और दूसरी ओर उसे बुद्धि जैसी शक्ति भी प्राप्त है

जिसकी सहायता से वो अपने ज्ञान का असीमित रूप से बढ़ा सकता है और इन्हीं विशिष्टताओं के कारण मनुष्य के संकल्प व इरादे की सीमा, भौतिकता को पार करते हुए अनन्त तक फैल जाती है।

जिस प्रकार से पेड़-पौधे उसी समय परिपूर्ण होते हैं जब उन्हें विशेष प्रकार की ऊर्जा व शक्ति के प्रयोग का और उससे लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो जाए

और किसी पशु की परिपूर्णता उसी समय संभव होती है जब वह अपनी इंद्रियों और स्वाभाविक इच्छाओं का पूरी तरह पालन करे।

इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी विशेष परिपूर्णता उसी समय संभव है जब मनुष्य अपनी विशेष शक्तियों अर्थात ज्ञान व बुद्धि का सही प्रयोग करे,

भलाई और बुराई के विभिन्न स्तरों को पहचाने और अपनी बुद्धि द्वारा भले कर्मों में सबसे अच्छे काम का चयन कर सके।

इस आधार पर एक व्यवहार उसी समय मानवीय हो सकता है जब बुद्धि के प्रयोग के साथ और विशेष मानवीय इच्छाओं के अंतर्गत हो

और जो काम पशुओं की विशेषताओं के साथ अर्थात बुद्धि व बोध के प्रयोग में लाए बिना किए जाएंगे वो निश्चित रूप से पशुओं वाले व्यवहार कहलाएंगे भले ही उसे करने वाला विदित रूप से मनुष्य दिखाई दे।

इसी प्रकार मनुष्य का वह काम जो स्वभाव या किसी प्रतिक्रिया के रूप में बिना किसी इरादे के किया गया हो वह केवल शारीरिक प्रक्रिया होती है।

संकल्प व इरादे के साथ किया जाने वाला काम इच्छित परिणाम तक पहुंचने का एक मार्ग होता है और उसका महत्व, परिणाम और आत्मा की परिपूर्णता में उसके प्रभाव पर निर्भर करता है

तो फिर यदि कोई काम किसी आत्मिक विशेषता से हाथ धोने कारण बने तो वह नकारात्मक काम होगा।

इस प्रकार मानव बुद्धि, इरादे के साथ किए जाने वाले कामों के बारे में तभी निर्णय ले सकती है और उसके महत्व को उसी समय समझ सकती है

जब उसे मनुष्य की परिपूर्णता के मानदंडों और चरणों का ज्ञान हो, उसे पता हो कि मनुष्य किस प्रकार का प्राणी है?

उसके जीवन की परिधि कहां तक है? एक मनुष्य आध्यात्मिक दृष्टि से कितनी ऊंचाइयों तक पहुंच सकता है? दूसरे शब्दों में बुद्धि यह समझ ले कि मनुष्य के अस्तित्व के आयाम क्या हैं और उसके जन्म का उद्देश्य क्या है?

इस आधार पर सही विचारधारा तक उसी समय पहुंचा जा सकता है जब विचाराधारा स्वस्थ हो और विचारधारा के अनुसरण के समय उसे जिन समस्याओं का सामना करना पड़े।

उसके समाधान की उसमें शक्ति हो। क्योंकि जब तक इस प्रकार की समस्याओं के समाधान की शक्ति मनुष्य में नहीं होगी उस समय तक व्यवहार अथवा किसी काम के महत्व का बोध प्राप्त करना उसके लिए कठिन होगा। इसी प्रकार जब तक लक्ष्य स्पष्ट नहीं होगा उसम समय तक उस लक्ष्य तक पहुंचने के मार्ग का पता लगाना भी संभव नहीं हो सकता।

**इस चर्चा के मुख्य बिंदु इस प्रकार हैः**

१ प्रत्येक मनुष्य में प्रगति की चाहत होती है और वह स्वाभाविक रूप से अपनी कमियों को छिपाने का प्रयास करता है।

प्रगति की स्वाभाविक चाहत को यदि सही दिशा मिल जाए तो वह मनुष्य की परिपूर्णता का कारण बनती है अन्यथा विभिन्न प्रकार के अवगुणों को जन्म देती है।

२ पेड़-पौधों की अपनी प्रगति के लिए विशेष प्रकार की परिस्थितियां और वस्तुओं की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार पशुओं की प्रगति कुछ विशेष वस्तुओं पर निर्भर होती है। मनुष्य की प्रगति भी विशेष प्रकार की है और उसके लिए बुद्धि सहित कुछ विशेष तत्वों की आवश्यकता होती है। (जारी है)

## स्वाभाविक भावना

यह जो कहा जाता है कि धर्म के प्रति जिज्ञासा एक स्वाभाविक बात है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि यह भावना सदैव सब लोगों में समान रूप से पायी जाती है

बल्कि संभव है कि बहुत से लोगों में यह भावना विशेष परिस्थितियों और ग़लत प्रशिक्षण के कारण निष्क्रिय रूप में दबी पड़ी हो या अपने स्वाभाविक मार्ग से विचलित हो गई हो।

मनुष्य की दूसरी स्वाभाविक भावनाओं से साथ भी ऐसा होना संभव है। उदाहरण स्वरूप खाने की इच्छा मनुष्य में स्वाभाविक रूप से भूख की दशा में उत्पन्न होती है

किंतु यह आवश्यक नहीं है कि यह इच्छा सब लोगों में समान रूप से पायी जाए। उदाहरण स्वरूप कुछ लोगों को किसी रोग के कारण भूख नहीं लगती,

हालांकि उनके शरीर को खाने की आवश्यकता होती है या फिर कुछ लोग भूख मिटाने वाली दवा खाकर इस इच्छा को दबाते हैं

किंतु इससे इस वास्तविकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि भूख एक स्वाभाविक इच्छा है। यही स्थिति धार्मिक भावना की भी है।

यदि कुछ लोग अपने परिवार या आसपास के वातावरण के कारण इस ओर आकृष्ट नहीं होते तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उनमें यह भावना मौजूद नहीं है।

यह बात तो स्पष्ट हो चुकी है कि वास्तविकता की खोज और अपने हितों की रक्षा जैसी स्वाभाविक भावनाएं अध्ययन व चिंतन तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए शक्तिशाली कारक होती हैं।

इस आधार पर जब किसी को यह पता चले कि पूरे इतिहास में कुछ ऐसे लोग रहे हैं

जो दावा करते थे कि हम इस सृष्टि के रचयिता की ओर से मानवजाति के मार्गदर्शन के लिए चुने गए हैं और हमारा ईश्वरीय कर्तव्य है कि हम लोगों के लोक-परलोक को संवारें।

इसके साथ ही यह भी पता चले कि इन लोगों ने अपने इस अभियान के लिए बड़ी कठिनाइयां झेलें और कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपनी बात पर अडिग रहे यहां तक कि

इस प्रकार के बहुत से लोगों को अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ा तो फिर स्वाभाविक रूप से मनुष्य के भीतर इस प्रकार के लोगों के बारे में जानकारी प्राप्त करने की भावना उत्पन्न होगी।

वह अवश्य यह जानना चाहेगा कि क्या इन ईश्वरीय दूतों के दावे सही थे और उनके पास ठोस प्रमाण थे?

विशेषकर जब उसे यह पता चलेगा कि इन ईश्वरीय दूतों ने मनुष्य के कल्याण व लोक-परलोक में सफलता दिलाने का वचन दिया है

और कहा है कि उनका मार्ग न अपनाने की स्थिति में मनुष्य को ऐसा दंड मिलेगा जो कभी भी समाप्त नहीं होगा।

अर्थात उनका यह कहना है कि यदि उनकी बात मान ली जाए तो मनुष्य को अत्यधिक लाभ पहुंचेगा और विरोध की स्थिति में बहुत बड़े नुक़सान उठाने पड़ेंगे।

इस बात को जान लेने क बाद कोई भी जानकार और समझदार व्यक्ति अपने आपको इन ईश्वरीय दूतों और उनके लाए हुए संदेशों के बारे में अध्ययन व जानकारी इकट्ठा करने से कैसे रोक सकता है?

हां यह भी हो सकता है कि कुछ लोग आलस्य के कारण अध्ययन व जानकारी प्राप्त करने का कष्ट न उठाना चाहें या फिर यह सोचकर कि धर्म ग्रहण करने के बाद उन पर कुछ प्रतिबंध लग जाएंगे और उन्हें बहुत से कामों से रोक दिया जाएगा, इस संदर्भ में अध्ययन न करें।

किंतु ऐसे लोगों को यह सोचना चाहिए कि कहीं उनका यह आलस्य उनके लिए सदैव रहने वाले दंड और प्रकोप का कारण न बन जाए।

ऐसे लोगों की दशा उस नादान रोगी बच्चे से अधक बुरी है जो कड़वी दवा के डर से डाक्टर के पास जाने से बचता है और अपनी निश्चित मृत्यु की भूमिका प्रशस्त करता है क्योंकि इस प्रकार के बच्चे की बुद्धि पूर्ण रूप से विकसित नहीं होती

जिसके कारण वह अपने हितों और ख़तरों को भलीभांति समझ नहीं सकता। डाक्टर के सुझाव का पालन न करने से मनुष्य इस संसार में कुछ दिनों के जीवन से ही वंचित होगा।

जानकार मनुष्य जो परलोक में सदैव रहने वाले दंड के बारे में सोचने व चिंतन करने की क्षमता रखता है उसको सांसारिक सुखों और परलोक के दंडों और सुखों की एक दूसरे से तुलना करनी चाहिए।

संभव है कि कुछ लोग यह बहाना बनाएं कि किसी समस्या का समाधान खोजना उस समय सही होता है जब मनुष्य को उसके समाधान तक पहुंचने की आशा होती है

किंतु हमें धर्म के बारे में चिंतन व अध्ययन से किसी परिणाम की आशा ही नहीं है। इस लिए हम समझते हैं कि ईश्वर ने हमें जो योग्यताएं, क्षमताएं और शक्ति दी है

उसे हम उन कामों के लिए प्रयोग करें जिनके परिणाम व प्रतिफल हमें सरलता से मिल जाएं और जिनके परिणामों की हमें अधिक आशा हो।

ऐसे लोगों के उत्तर में यही कहना चाहिए कि पहली बात तो यह है कि धर्म संबंधी समस्याओं के समाधान की आशा अन्य विषयों से किसी भी प्रकार कम नहीं है और हमें पता है कि विज्ञान की बहुत सी समस्याओं के समाधान के लिए वैज्ञानिकों ने दसियों वर्षों तक अनथक प्रयास किए हैं।

दूसरी बात यह है कि समाधान की आशा के प्रतिशत पर ही नज़र नहीं रखनी चाहिए बल्कि उसके बाद मिलने वाले लाभ की मात्रा को भी दृष्टिगत रखना चाहिए।

उदाहरण स्वरूप यदि किसी व्यापार में लाभ प्राप्त होने की आशा पांच प्रतिशत हो और दूसरे किसी व्यापारिक कार्य में लाभ प्राप्त होने की आशा दस प्रतिशत हो किंतु पहले वाले काम में अर्थात जिसमें लाभ मिलने की आशा पांच प्रतिशत हो लाभ की मात्रा एक हज़ार रूपए हो और दूसरे काम में अर्थात जिसमें लाभ प्राप्त होने की आशा दस प्रतिशत है किंतु लाभ की मात्रा सौ रूपए हो तो पहला काम दूसरे काम से दस गुना अधिक लाभदायक होगा।

उदाहरण स्वरूप यदि किसी व्यक्ति को दो स्थान बताए जाएं और उससे कहा जाए कि पहले स्थान पर दस ग्राम सोना गड़ा है किंतु इस बात की संभावना कि वहां सोना गड़ा हो पचास प्रतिशत है

जबकि दूसरे स्थान पर दस किलोग्राम सोना गड़े होने की संभावना है किंतु सोना गड़ा है कि नहीं इसकी संभावना बीस प्रतिशत है और उस व्यक्ति को एक ही स्थान पर खुदाई करने का अधिकार हो तो बुद्धिमान व्यक्ति वही काम करेगा जिसमें संभावित लाभ अधिक हो क्योंकि निश्चित लाभ किसी स्थान पर भी खुदाई से नहीं है तो फिर खुदाई वहीं करेगा जहां अनुमान सही होने की स्थिति में अधिक लाभ की संभावना है।

अब चूंकि धर्म के बारे में अध्ययन और उसमें चिंतन व खोज का संभावित लाभ, किसी भी अन्य क्षेत्र में अध्ययन व खोज से अधिक होगा, भले ही खोज का लाभ प्राप्त होने की संभावना कम हो, क्योंकि किसी भी अन्य क्षेत्र में खोज का लाभ चाहे जितना अधिक हो, सीमित ही होगा परंतु धर्म के बारे में खोज के बाद जो लाभ प्राप्त होगा वह मनुष्य के लिए अनंत व असीमित होगा।

तार्किक रूप से धर्म के बारे में खोज न करने का औचित्य केवल उसी दशा में सही हो सकता है जब मनुष्य को धर्म और उससे संबंधित विषयों के ग़लत होने का विश्वास हो जाए।

किंतु यह विश्वास भी अध्ययन व खोज के बिना कैसे होगा?

**चर्चा के सार बिंदु इस प्रकार हैः**

धर्म की खोज एक स्वाभाविक होने के बावजूद आवश्यक नहीं है कि सारे लोगों में समान रूप से हो क्योंकि अन्य स्वाभाविक भावनाओं की भांति इस इच्छा पर भी वातावरण व घर परिवार का प्रभाव पड़ता है।

यदि किसी मनुष्य को इतिहास में कुछ ऐसे लोगों के बारे में ज्ञात हो जो ईश्वरीय दूत होने का दावा करते थे और कहते थे कि उनके लाए हुए धर्म को स्वीकार करने की दशा में दोनों लोकों में सफलताएं मिलेंगी और इंकार की स्थिति में सदैव के लिए नर्क में रहना होगा तो एक बुद्धिमान मनुष्य के लिए आवश्यक है कि उनके बारे में कुछ जानकारियां जुटाए और देखे कि वे लोग क्या कहते थे और अपने कथनों के लिए उनके पास क्या प्रमाण थे? (जारी है)

## स्वयं को पहचानें किंतु क्यों?

पिछली चर्चा में हमने जाना कि प्रत्येक मनुष्य में प्रगति की चाहत होती है और वह स्वाभाविक रुप से अपनी कमियों को छिपाने का प्रयास करता है

प्रगति की स्वाहाविक चाहत को यदि सही दिशा मिल जाए तो वह मनुष्य की परिपूर्णता का कारण बनती है अन्यथा विभिन्न प्रकार के अवगुणों को जन्म देती है।

इस के साथ ही हम ने इस बात पर भी चर्चा की कि पेड़ पौधों को अपनी प्रगति के लिए विशेष प्रकार की परिस्थितियों और वस्तुओं की आवश्यकता होती है

इसी प्रकार पशुओं की प्रगति विशेष प्रकार की है और उस के लिए बुद्धि सहित कुछ विशेष तत्वों की आवश्यकता होती है।

मनुष्य स्वाभाविक रुप से स्वंय को समस्त अच्छाइयों से सुसज्जित करना चाहता है। वह चाहता है कि ऐसे काम करे जो उसे एक परिपूर्ण मनुष्य बना दें

और सब लोग उसे अच्छा कहें और समझें अर्थात स्वाभाविक रुप से हर व्यक्ति में सही अर्थों में मनुष्य बनने की इच्छा होती हैं

किंतु इस बात को जानने के लिए कि कौन से वास्तव में आनन्द होग की पाश्विक भावना का अनुसरण करते हैं उन्हें मनुष्य नहीं कहा जा सकता ।

क्योंकि मनुष्य को ईश्वर ने इच्छा के साथ बुद्धि भी दी है जब कि पशुओं को केवल इच्छा दी है इस लिए जो मनुष्य बुद्धि के प्रयोग के बिना अपनी इच्छाओं का अनुसरण करता है

वह पशुओं से भी बुरा होता है। क्योंकि पशुओं के पास तो बुद्धि नहीं होती किंतु मनुष्य के पास बुद्धि होती है फिर भी वह उस का प्रयोग नहीं करता।

इस के साथ यह भी है कि चूंकि ऐसे लोग अपनी मानवीय योग्यताओं को जो वास्तव में ईश्वरीय कृपा होती है, नष्ट करते हैं इस लिए उन्हें दंड भी मिलता है।

क्योंकि स्वाभाविक बात है कि यदि आप किसी को कोई बहूमूल्य उपहार दें और उपहार लेने वाला उस का प्रयोग न करे बल्कि उसे नष्ट कर दे तो निश्चित रुप से आप को गुस्सा आएगा।

मनुष्य और ईश्वर के बारे में भी यही स्थिति है। ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि तथा अन्य बहुत सी योग्यताएं दी हैं

अब यदि मनुष्य अपनी बुद्धि और योग्यताओं का प्रयोग न करे और अपनी परिपूर्णता में उस का प्रयोग न करे

बल्कि उसे नष्ट करके पशुओं की भांति केवल अपनी इच्छाओं का अनुसरण करने लगे तो निश्चित रुप से वह ईश्वर के प्रकोप का पात्र बनेगा कि जिस ने उसे यह योग्यतांए प्रदान की हैं।

अच्छे कर्म मनुष्य को उस के गंतव्य तक पहुंचाएंगे किंतु सबसे पहले उसे अपनी परिपूर्णता की सीमाओं का ज्ञान प्राप्त करना होगा।

अर्थात मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए किसी भी प्रयास से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि एक मनुष्य किस सीमा तक आगे जा सकता है कितनी प्रगति कर सकता है और उस की परिपूर्णता की सीमा क्या है?

मानवीय परिपूर्णता का ज्ञान और पहचान मनुष्य के अस्तित्व की वास्तविकता और उस के आरंभ व अंत के ज्ञान पर निर्भर होती है। अर्थात जब तक हमें यह ज्ञान नहीं होगा कि हम क्या हैं?

कौन हैं? कहॉ से आए हैं? हमारी वास्तविकता क्या है? तब तक हमें अपनी परिपूर्णता के मार्ग का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता इसी लिए कहा जाता है कि परिपूर्णता का ज्ञान,

मनुष्य की पहचान पर निर्भर है। उस के बाद मनुष्य के लिए विभिन्न व्यवहारों की अच्छाई व बुराई को जानना और परिपूर्णता के विभिन्न चरणों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होगा

ताकि अपने आप को परिपूर्ण मनुष्य बनाने के लिए सही रास्ते को चुन सके क्योंकि मनुष्य जब तक इस रास्ते पर नहीं चलेगा वह सही आयडियालॉजी और मत को स्वीकार नहीं कर सकता।

इस लिए सही धर्म की खोज की दिशा में प्रयास आवश्यक है और उस के बिना मानवीय परिपूर्णता तक पहुंचना संभव नहीं होगा।

क्योंकि जो काम इस प्रकार के मूल्यों व मान्यताओं के अंर्तगत नहीं किए जाएंगे वह वास्तव में मानवीय व्यवहार ही नहीं होंगे।

जैसा कि हम बता चुके हैं जिस प्रकार पेड़ पौधों के विकारस के लिए विशेष परिस्थितियों की आवश्यक्ता होती है

उसी प्रकार मनुष्य के विकास के लिए भी विशेष परिस्थितयां होती चाहिए जो लोग सच्चे धर्म को पहचानने का प्रयास नहीं करते

या फिर पहचान लेने के बाद भी हठ धर्मी व ज़िद के कारण उस का इन्कार करते हैं वह वास्तव में स्वंय को पशुओं की पंक्ति में खड़ा कर लेते हैं।

**इस अध्याय में चर्चा के मुख्य बिंदुः**

· मनुष्य स्वाभाविक रुप से स्वंय को समस्त अच्छाइयों से सुसज्जित करना चाहता है।

वह चाहता है कि ऐसे काम करे जो उसे एक परिपूर्ण मनुष्य बना दे।

· मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए किसी भी प्रयास से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि एक मनुष्य किस सीमा तक आगे जा सकता है

कितनी प्रगति कर सकता है और उस की परिपूर्णता की सीमा क्या है।

· सही धर्म की खोज की दिशा में प्रयास आवश्यक है और उस के बिना मानवीय परिपूर्णता तक पहुंचना संभव नहीं होगा।

· जो मनुष्य बुद्वि के प्रयोग के बिना अपनी इच्छाओं का अनुसरण करता है वह पशुओं से भी बुरा होता है।

क्योंकि पशुओं के पास तो बुद्धि नहीं होती किंतु मनुष्य के पास बुद्धि होती है फिर भी वह उस का प्रयोग नहीं करता।

· मनुष्य यदि ईश्वर द्वारा प्रदान किये गये उपहारों अर्थात अपनी बुद्धि और योग्यताओं को नष्ट करता है तो ईश्वरीय प्रकोप का पात्र बन जाता है।

## नास्तिकता और भौतिकता-१

नास्तिकता और भौतिकता का इतिहास बहुत प्राचीन है और ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार प्राचीन काल से ही ईश्वर पर विश्वाश रखने वाले लोग थे, उसी प्रकार उसका इन्कार करने वाले भी लोग मौजूद थे किंतु उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं थी परंतु १८ वीं शताब्दी से युरोप में

धर्मविरोध का चलन आरंभ हुआ और धीरे धीरे पूरे विश्व में फैलता चला गया। यद्यपि धर्म विरोध का चलन गिरजाघरों की सत्ता और ईसाई धर्म गुरुओं की निरंकुशता तथा ईसाई धर्म के विरोध में आरंभ हुआ था किंतु समय के साथ ही साथ इस लहर ने अन्य धर्मों के अनुयाइयों को भी अपनी लपेट में ले लिया और धर्म से दूरी की भावना, अन्य देशों में पश्चिम के औद्योगिक व वैज्ञानिक विकास के साथ ही पहुंच गयी और हालिया शताब्दियों में मार्क्सवादी व आर्थिक विचारधाराओं के साथ मिल कर धर्म विरोध की भावना ने मानव समाज को त्रासदी के मुहाने पर ला खड़ा किया है।

धर्म विरोधी भावना के फैलने के बहुत से कारण हैं किंतु यहां पर हम समस्त कारणों को तीन भागों में बांट कर उन पर चर्चा करने का प्रयास करेंगे।

धर्मविरोधी भावना के फैलने का प्रथम कारण मानसिक है अर्थात वह भानवाएं जो धर्म से दूरी और नास्तिकता के कारक के रूप में किसी भी मनुष्य में उत्पन्न

हो सकती हैं जैसे भोग विलास व ऐश्वर्य की अभिलाषा और प्रतिबद्धता से दूरी की चाहत मनुष्य को धर्म का विरोध करने पर उकसा सकती है। वास्तव में लोगों को प्रायः ऐसे सुख की खोज होती है जिसे इंद्रियों द्वारा भोगा जा सके और धर्म व ईश्वर के आदेशों के पालन का सुख ऐसा है कि कम से कम इस संसार में उसे इंद्नियों द्वारा समझना हर एक के बस की बात नहीं है। दूसरी ओर निरकुंशता और दायित्वहीनता से प्रेम भी मनुष्य को धर्म की प्रतिबद्धताओं से दूर रख सकता है क्योंकि ईश्वरीय धर्म को मानने से कुछ वर्जनाएं और प्रतिबंध लागू हो जाते हैं जिनका पालन इस बात का कारण बनता है कि मनुष्य को बहुत से अवसरों पर अपना मनचाहा काम करने से रोका जाता है और इस प्रकार से उसकी स्वतंत्रता या दूसरे शब्दों में निरंकुशता समाप्त हो जाती है जो असीमित स्वतंत्रता व निरकुंशता की चाहत रखने वालों को स्वीकार नहीं होती, इसी लिए वह इसके कारक अर्थात धर्म के विरोध पर उतर आते हैं। धर्म के विरोध के बहुत से मानसिक कारकों में यह एक मुख्य और प्रभावी कारक है और बहुत से लोग जाने अनजाने में इसी भावना के अंतर्गत ईश्वर और धर्म का इन्कार करते हैं।

धर्म का विरोध करने के दूसरे प्रकार के कारक को हम वैचारिक कारक कह सकते हैं। इससे आशय वास्तव में वह आशंकाएं और संदेह हैं जो लोगों के मन में उत्पन्न होते हैं या फिर दूसरों की बाते सुनकर उनके मन में संदेह व शकांए उत्पन्न हो जाती हैं और चूंकि इस प्रकार के लोगों में वैचारिक शक्ति क्षीण और विश्लेषण क्षमता का अभाव होता है इस लिए वे अपनी अज्ञानता के कारण जब संदेहों और शंकाओं का उत्तर नहीं खोज पाते तो उसका कम से कम प्रभाव उनपर यह होता है कि वे स्वयं ही धर्म का विरोध करने लगते हैं।

इस प्रकार के कारकों को भी कई भागों में बांटा जा सकता है। उदाहरण स्वरूप वह शंकाएं जो अंधविश्वास के कारण उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार कभी कभी वैज्ञानिक अध्ययन भी सही रूप से धर्म की शिक्षा और वैज्ञानिक तथ्य में तालमेल बिठा न पाने के चलते धर्म के प्रति शंका उत्पन्न होने का कारण बन जाते हैं।

धर्म विरोध का एक अन्य कारक सामाजिक होता है, अर्थात कुछ समाजों में ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं कि धार्मिक नेता किसी न किसी प्रकार से उन परिस्थितियों के ज़िम्मेदार समझे जाते हैं और चूंकि बहुत से लोगों में सही स्थिति समझने की शक्ति नहीं होती और विश्लेषण नहीं कर पाते इस लिए वे इस प्रकार की परिस्थितियों को धर्मगुरुओं के हस्तक्षेप का परिणाम मानते हैं और फलस्वरूप धर्म के ही विरोधी हो जाते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि धर्म पर आस्था ही सामाजिक समस्याओं और परिस्थितियों की ज़िम्मेदार है।

इस भावना और इस कारक को युरोप में पुनर्जागरण काल में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। धार्मिक मामलों में गिरजाघरों के कर्ता-धर्ता लोगों ने, ईसाईयों को धर्म से दूर कर दिया और धर्मगुरुओं के क्रियाकलापों ने लोगों के मन में यह विचार उत्पन्न किया कि धर्म और राजनीति में अलगाव होना चाहिए और सामाजिक नेताओं ने ईसाई धर्म गुरुओं को सत्ता से दूर रखने के लिए इस विचार का जम कर प्रसार प्रचार किया और परिणाम स्वरूप धर्म को पहले आम लोगों की दिनचर्या से दूर किया गया और फिर उसे अलग-थलग कर दिया गया जिसके

कारण बहुत से लोगों को लगने लगा कि धर्म जीवन से अलग कोई विषय है और बहुत से लोग इस का विरोध करने लगे।

ये तो कुछ ऐसे कारक थे जो मनुष्य में धर्म का विरोध करने की भावना जगाते हैं किंतु यह भी है कि बहुत से धर्म विरोधी ऐसे भी हैं जिनमें तीनों प्रकार के कारक सक्रिय होते हैं तो ऐसे लोग विरोध के साथ ही साथ शत्रुता भी करते हैं और धर्म को अपने लक्ष्यों की पूर्ति में सब से बड़ी बाधा मानते हैं।

**इस चर्चा के मुख्य बिंदुः**

· एक शक्तिशाली ईश्वर का अस्तित्व ईश्वरीय मत में मूल आधार है जबकि भौतिक विचारधारा में ऐसे किसी ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार किया जाता है। दोनों मतों में यही मुख्य अंतर है।

· धर्म परायणता की भांति नास्तिकता का भी इतिहास अत्यधिक पुराना है किंतु यह विचार धारा १८ वीं शताब्दी में युरोप में पुनर्जागरण के बाद व्यापक रुप से फैलना आरंभ हुई और युरोप के वैज्ञानिक विकास के साथ ही विश्व के अन्य क्षेत्रों और अन्य धर्मों के अनुयाईयों में भी फैल गयी।

· धर्मविरोध के कई कारक होते हैं किंतु मुख्य रूप से मानसिक, सामाजिक और वैचारिक कारकों में उन्हें बांटा जा सकता है। किसी धर्मविरोधी में एक कारक होता है किंतु किसी किसी में तीनों कारक भी हो सकते हैं।

## नास्तिकता व भौतिकता-२

भ्रष्टाचार और ईश्वर के इन्कार के कारकों की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन में प्रत्येक कारक को समाप्त और निवारण के लिए विशेष प्रकार की शैली व मार्ग की आवश्यकता है उदाहरण स्वरूप मानसिक व नैतिक कारकों को सही प्रशिक्षण और उससे होने वाली हानियों की ओर ध्यान देकर समाप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार सामाजिक कारकों के प्रभावों से बचने के लिए इस प्रकार के कारकों पर अंकुश लगाने के साथ ही साथ धर्म के गलत होने और उस धर्म के मानने वालों के व्यवहार के गलत हाने के मध्य अंतर को स्पष्ट करना चाहिए किंतु प्रत्येक दशा में मानसिक व सामाजिक कारकों के प्रभावों पर ध्यान का, कम से कम यह लाभ होता है कि मनुष्य अंजाने में उस के जाल में फंसने से सुरक्षित रहता है।

इसी प्रकार वैचारिक कारकों के कुप्रभावों से बचने के लिए उचित मार्ग अपनाना चाहिए और अंधविश्वास और विश्वास में अंतर को स्पष्ट करते हुए धर्म की

आवश्यकता व महत्व को सिद्ध करने के लिए ठोस व तार्किक प्रमाणों को प्रयोग करना चाहिए और इस के साथ यह भी स्पष्ट करना चाहिए के दलील व प्रमाण की कमज़ोरी निश्चित रूप से जिस विषय के लिए दलील व प्रमाण लाया गया हो उसके गलत होने का प्रमाण नहीं है। अर्थात यदि किसी तथ्य को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया तर्क या प्रमाण कमज़ोर हो तो उससे यह नहीं सिद्ध होता है कि वह विषय भी निश्चित रूप से ग़लत है क्योंकि यह भी हो सकता है कि वह विषय सही हो उसके लिए ठोस प्रमाण भी मौजूद हों किंतु जो व्यक्ति आप के सामने प्रमाण पेश कर रहा है उसमें इतनी क्षमता न हो।

स्पष्ट है कि हम यहां पर पथभ्रष्टता और उसकी रोकथाम के मार्गों पर व्यापक रूप से यहां चर्चा नहीं कर सकते, इसी लिए अब हम अपनी चर्चा को आगे बढ़ाते हैं।

ईश्वर और धर्म के बारे में बहुत से लोग विभिन्न प्रकार के संदेह प्रकट करते हैं किंतु उनमें से सब से मुख्य आपत्ति यह है कि किस प्रकार किसी एसे अस्तित्व की उपस्थिति पर विश्वास किया जा सकता है जिसे इन्द्रियों द्वारा महसूस नहीं किया जा सके?

प्रायः इस प्रकार की शंका कम गहराई से सोचने वाले लोग प्रकट करते हैं किंतु यह भी देखा गया है कि कुछ वैज्ञानिक और पढ़े लिखे लोग भी यह प्रश्न कर बैठते हैं अलबत्ता यह लोग उन लोगों में से होते हैं जो इन्द्रियों से महसूस किये जाने के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं और हर उस अस्तित्व का इन्कार करते हैं जिसे वह इन्द्रियों द्वारा महसूस न कर सकें।

इस प्रकार की शंका का निवारण इस प्रकार से किया जा सकता है कि इन्द्रियों द्वारा केवल आयाम व व्यास रखने वाली वस्तुओं और अस्तित्वों को ही महसूस किया जा सकता है। हमारी जो इन्द्रियां हैं वह विशेष परिस्थितियों में उन्हीं

वस्तुओं को महसूस करती हैं जो उनकी क्षमता के अनुरुप हों। जिस प्रकार से यह नहीं सोचा जा सकता कि आंख, आवाज़ों को सुने या कान रंगों को देखें उसी प्रकार यह भी नहीं सोचा जा सकता कि ब्रह्माण्ड की सारी रचनाओं को हमारी इन्द्रियां महसूस कर सकती हैं।

क्योंकि पहली बात तो यह है कि यही भौतिक वस्तुओं में भी बहुत सी एसी चीज़ें हैं जिन्हें हम इन्द्रियों द्वारा सीधे रूप से महसूस नहीं कर सकते जैसे हमारी इन्द्रियां पराकासनी किरणों को या चुंबकीय लहरों को महसूस नहीं कर सकतीं किंतु फिर भी हमें उनके अस्तित्व पर पूरा विश्वास है। या इसी प्रकार से भय व प्रेम की मनोदशा या हमारे इरादे और संकल्प यह सब कुछ मौजूद है किंतु हम इन्हें अपनी इंद्रियों से महसूस नहीं कर सकते क्योंकि मनोदशाओं और मानसिक अवस्था को इन्द्री द्वारा महसूस किया जाना संभव नहीं है। इसी प्रकार आत्मा को भी इन्द्रियों द्वारा महसूस नहीं किया जा सकता और यह यह महसूस करना या आभास करना स्वयं ही ऐसी दशा है जिसे इन्द्रियों द्वारा महसूस नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार से यह प्रमाणित हो गया कि विदित रूप से हमारी इन्द्रियों द्वारा यदि किसी वस्तु को आभास करना संभव न हो तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं होगा कि वह वस्तु मौजूद ही नहीं है या यह कि उसका होना कठिन है।

कुछ समाजशास्त्री कहते हैं कि ईश्वर पर विश्वास और धर्म पर आस्था वास्तव में ख़तरों से भय विशेषकर भूकंप आदि जैसी प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न होने वाले डर का परिणाम है और वास्तव में मनुष्य ने अपने मन की शांति के लिए ईश्वर नाम के एक काल्पनिक अस्तित्व को गढ़ लिया है और उस की उपासना भी करने लगा है और इसी लिए जैसे जैसे प्राकृतिक आपदाओं के कारणों और उनसे उत्पन्न ख़तरों से निपटने के मार्ग स्पष्ट होते जाएंगे वैसे वैसे ईश्वर पर आस्था में भी कमी होती जाएगी।

मार्क्सवादियों ने इस शंका को बहुत अधिक बढ़ा चढ़ा कर पेश किया और इसे अपनी पुस्तकों में समाज शास्त्र की एक उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत किया और इसी वचार धारा से उन्होंने अज्ञानी लोगों को जमकर बहकाया भी।

इस शंका के उत्तर में हम यह कहेंगे कि पहली बात तो यह है कि इस शंका का आधार कुछ समाज शास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत धारणा है और इसके सही होने की कोई तार्किक दलील मौजूद नहीं है। दूसरी बात यह है कि इसी काल में बहुत से बुद्धिजीवी जिन्हें दूसरों से कई गुना अधिक विभिन्न प्राकृतिक ख़तरों के कारणों का ज्ञान था, ईश्वर के अस्तित्व पर पूरा विश्वास रखते थे। उदाहरण स्वरूप आइन्स्टाइन, क्रेसी, एलेक्सिस कार्ल आदि जैसे महान वैज्ञानिक व विचारक जिन्हों ने ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए कई किताबें और आलेख लिखे हैं इस लिए यह कहना ग़लत है कि ईश्वर पर विश्वास, भय का परिणाम होता है। एक अन्य बात यह भी है कि यदि कुछ प्राकृतिक घटनाओं के कारणों से अज्ञानता, मनुष्य को ईश्वर की ओर आकृष्ट करे तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं निकालना चाहिए के ईश्वर, मनुष्य के भय की पैदावार है। जैसा कि बहुत से वैज्ञानिकों व

शोधों व अविष्कारों के पीछे, सुख ख्याति जैसी भावनाएं होती हैं किंतु इस से अविष्कारों पर कोई प्रभाव नहीं होता।

**इस चर्चा के मुख्य बिन्दुः**

· भ्रष्टाचार और ईश्वर के इन्कार के कारकों की समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन में प्रत्येक कारक को समाप्त और निवारण के लिए विशेष प्रकार की शैली व मार्ग की आवश्यकता है।

· ईश्वर को इन्द्रियों द्वारा यदि महसूस न किया जाए तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसका अस्तित्व ही नहीं है क्योंकि भौतिक वस्तुओं में भी बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें हम इन्द्रियों द्वारा सीधे रूप से महसूस नहीं कर सकते।

· ईश्वर भय व प्राकृतिक आपदाओं से अज्ञानता की उत्पत्ति नहीं है क्योंकि विश्व के बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने भी जिन्हें आपदाओं से कारणों का पूर्ण ज्ञान था और उनसे अंजाना भय भी नहीं रखते थे, ईश्वर के अस्तित्व पर आलेख लिखे और उसे माना है।

## कारक और ईश्वर

पश्चिमी बुद्धिजीवी ईश्वर के अस्तित्व की इस दलील पर कि हर वस्तु के लिए एक कारक और बनाने वाला होना चाहिए यह आपत्ति भी करते हैं कि यदि यह सिदान्त सर्वव्यापी है अर्थात हर अस्तित्व के लिए एक कारक का होना हर दशा में आवश्यक है तो फिर यह सिद्धान्त ईश्वर पर भी यथार्थ होगा अर्थात चूंकि वह भी एक अस्तित्व है इस लिए उसके लिए भी एक कारक ही आवश्यकता होनी चाहिए जबकि ईश्वर को मानने वालों का कहना है कि ईश्वर मूल कारक है और उसके

लिए किसी भी कारक की आवश्यकता नहीं इस प्रकार से यदि ईश्वर को मानने वालों की यह बात स्वीकार कर ली जाए तो इस का अर्थ यह होगा कि ईश्वर ऐसा अस्तित्व है जिसे कारक की आवश्यकता नहीं है अर्थात वह कारक आवश्यक होने के सिद्धान्त से अलग है तो इस स्थिति में ईश्वरवादियों द्वारा इस सिद्धान्त को प्रयोग करते हुए मूल कारक अर्थात ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना भी ग़लत हो जाता है । अर्थात यह नहीं कहा जा सकता था कि मूल कारक ईश्वर है बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि मूल पदार्थ और ऊर्जा भी बिना किसी कारक के अस्तित्व में आई और फिर उसमें जो परिवर्तन आए उससे सृष्टि की रचना हो गयी ।

इस शंका के उत्तर में यह कहा जाता है कि वास्तव में यदि कोई इस सिद्धान्त को कि हर अस्तित्व के लिए कारक की आवश्यकता होती है सही रूप से समझे तो इस प्रकार की शंका उत्पन्न नहीं होती वास्तव में यह शंका कारक सिद्धान्त की ग़लत व्याख्या के कारण उत्पन्न होती है अर्थात शंका करने वाले यह समझते हैं कि यह जो कहा जाता है कि हर अस्तित्व के लिए कारक की आश्यकता होती है उसमें ईश्वर का अस्तित्व भी शामिल है जबकि ईश्वर के अस्तित्व का प्रकार

भिन्न होता है इस लिए यदि इस मूल सिद्धान्त को सही रूप से समझना है तो इस वाक्य को इस प्रकार से कहना होगा कि हर निर्भर अस्तित्व या संभव अस्तित्व को कारक की आवश्यकता होती है और इस इस सिद्धान्त से कोई भी इस प्रकार का अस्तित्व बाहर नहीं है किंतु यह कहना कि कोई पदार्थ या ऊर्जा बिना कारक के अस्तित्व में आ सकती है सही नहीं है क्योंकि पदार्थ और ऊर्जा का अस्तित्व संभव या निर्भर अस्तित्व है इस लिए वह इस सिद्धान्त से बाहर नहीं हो सकता किंतु ईश्वर का अस्तित्व चूंकि निर्भर व संभव अस्तित्व के दायरे में नहीं है इस लिए वह संभव व निर्भर अस्तित्व के लिए निर्धारित सिद्धान्तों से भी बाहर है।

एक शंका यह भी की जाती है कि संसार और मनुष्य के रचयता के अस्तित्व पर विश्वास, कुछ वैज्ञानिक तथ्यों से मेल नहीं खाता । उदाहरण स्वरूप रसायन शास्त्र में यह सिद्ध हो चुका है कि पदार्थ और ऊर्जा की मात्रा सदैव स्थिर रहती है तो इस आधार पर कोई भी वस्तु, न होने से , अस्तित्व में नहीं आती और न ही कोई वस्तु कभी भी सदैव के लिए नष्ट होती है जबकि ईश्वर को मानने वालों का

कहना है कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना ऐसी स्थिति में की जब कि कुछ भी नहीं था और एक दिन सब कुछ तबाह हो जाएगा और कुछ भी नहीं रहेगा ।

इसी प्रकार जीव विज्ञान में यह सिद्ध हो चुका है कि समस्त जीवित प्राणी , प्राणहीन वस्तुओं से अस्तित्व में आए हैं और धीरे धीरे परिपूर्ण होकर जीवित हो गये यहां तक कि मनुष्य के रूप में उनका विकास हुआ है किंतु ईश्वर को मानने वालों का विश्वास है कि ईश्वर ने सभी प्राणियों को अलग-अलग बनाया है।

इस प्रकार की शंकाओं के उत्तर में यह कहना चाहिए कि पहली बात तो यह है कि पदार्थ और ऊर्जा का नियम एक वैज्ञानिक नियम के रूप में केवल उन्ही वस्तुओं के बारे में मान्य है जिनका विश्लेषण किया जा सकता हो और उसके आधार पर इस दार्शनिक विषय का कि क्या पदार्थ और ऊर्जा सदैव से हैं और सदैव रहेंगे या नहीं, कोई उत्तर नहीं खोजा जा सकता ।

दूसरी बात यह है कि ऊर्जा और पदार्थ की मात्रा का स्थिर रहना और सदैव रहना, इस अर्थ में नहीं है कि उन्हें किसी रचयता की आवश्यकता ही नहीं है बल्कि ब्रहमांड की आयु जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक उसे किसी रचयता की आवश्यकता होगी क्योंकि रचना के लिए रचयता की आवश्यकता का मापदंड, उस के अस्तित्व में आवश्कयता का होना है न कि उस रचना का घटना होना और सीमित होना।

दूसरे शब्दों में पदार्थ और ऊर्जा , संसार के भौतिक कारक को बनाती है स्वंय कारक नहीं है और पदार्थ और ऊर्जा को स्वंय ही कर्ता व कारक की आवश्यकता होती है।

तीसरी बात यह है कि ऊर्जा व पदार्थ की मात्रा के स्थिर होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि नयी वस्तुंए पैदा नहीं हो सकतीं और उन में वृद्धि या कमी नहीं हो सकती और इसी प्रकार आत्मा , जीवन , बोध और इरादा आदि पदार्थ और ऊर्जा नहीं हैं कि उन में कमी या वृद्धि को पदार्थ व ऊर्जा से संबधिंत नियम का उल्लंघन समझा जाए।

और चौथी बात यह कि वस्तुओं के बाद उनमें प्राण पड़ने का नियम यद्यपि अभी बहुत विश्वस्त नहीं हैं और बहुत से बड़े वैज्ञानिकों ने इस नियम का इन्कार किया है किंतु फिर भी यह ईश्वर पर विश्वास से विरोधाभास नहीं रखता और अधिक से अधिक यह नियम जीवित प्राणियों में एक प्रकार के योग्यतापूर्ण कारक के अस्तित्व को सिद्ध करता है किंतु इस से यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि इस नियम का विश्व के रचयता से कोई संबंध है क्योंकि इस नियम में विश्वास रखने वाले बहुत से लोग और वैज्ञानिक इस सृष्टि और मनुष्य के लिए एक जन्मदाता के अस्तित्व में विश्वास रखने थे और रखते हैं।

## संभव वस्तु और कारक

हर निर्भर अस्तित्व या संभव अस्तित्व को कारक की आवश्यकता होती है और इस इस सिद्धान्त से कोई भी अस्तित्व बाहर नहीं है किंतु चूंकि ईश्वर का अस्तित्व इस प्रकार का अर्थात संभव व निर्भर नहीं होता इस लिए उस पर यह नियम लागू नहीं होता।

**भौतिक विचार धारा के कुछ मूल सिद्धान्त इस प्रकार हैं**

पहला सिद्धान्त यह है कि सृष्टि/ पदार्थ और भौतिकता के समान है और उस वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार किया जा सकता है जो पदार्थ और घनफल रखती है

अर्थात लंबाई, चौड़ाई और व्यास रखती हो। या फिर पदार्थ की विशेषताओं में से हो और पदार्थ की भांति मात्रा रखती हो और विभाजन योग्य भी हो। अर्थात भौतिक विचारधारा का यह कहना है कि यदि कोई वस्तु है तो उसका व्यास होना चाहिए उसका पदार्थ होना आवश्यक है उसका मात्रा व घनफल होना आवश्यक है और यदि कोई किसी ऐसे अस्तित्व के होने की बात करता है जिसमें यह सब विशेषताएं नहीं पायी जातीं हैं तो उसकी बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि ईश्वर को मानने वाले कहते हैं कि ईश्वर पदार्थ नहीं है, उसकी मात्रा नहीं है और उसे नापा-तौला नहीं जा सकता अर्थात भौतिकता से परे किसी अस्तित्व का होना संभव नहीं है।

यह सिद्धान्त भौतिकतावादी विचार- धारा का मूल सिद्धान्त समझा जाता है किंतु वास्तव में एक निराधार दावे के अतिरिक्त कुछ नहीं है क्योंकि भौतिकता से परे वास्तविकताओं को नकारने का कोई ठोस प्रमाण मौजूद नहीं है अर्थात इसका कोई प्रमाण नहीं है कि जो वस्तु भौतिक होगी उसी का अस्तित्व होगा और जिस वस्तु में भौतिकता नहीं होगी उसका अस्तित्व भी संभव नहीं। विशेषकर

मेटिरियालिज़्म के आधार पर जो प्रयोग और बोध पर आधारित होता है। क्योंकि कोई भी प्रयोग, भौतिकता से परे की वास्तविकताओं के बारे में कुछ भी स्पष्ट करने की क्षमता नहीं रखता। अर्थात मेटिरियालिज़्म शत प्रतिशत प्रयोग व बोध पर आधारित होता है और प्रयोग व बोध केवल भौतिक वस्तुओं के लिए ही होता है इस लिए प्रयोग भौतिकता से परे वास्तविकताओं के सच या ग़लत होने को सिद्ध करने की क्षमता नहीं रखता। अधिक से अधिक इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्रयोग द्वारा, भौतिकता से परे वास्तविकताओं को सिद्ध नहीं किया जा सकता किंतु इस से यह नहीं सिद्ध होता कि भौतिकता से परे किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है। इस प्रकार से कम से कम यह तो मानना पड़ेगा कि इस प्रकार के अस्तित्व की संभावना है अर्थात भौतिक विचार धारा रखने वालों को मानना पड़ेगा कि चूंकि प्रयोग द्वारा भौतिकता से परे अस्तित्वों को परखा नहीं जा सकता इस लिए संभव है कि इस प्रकार का अस्तित्व हो किंतु हम उसका प्रयोग नहीं कर सकते और यह हम पहले ही बता चुके हैं कि हमें बहुत सी ऐसी वस्तुओं के अस्तित्व पर पूर्ण विश्वास है जिन्हें देखा या महसूस नहीं किया जा सकता बल्कि जिन्हें प्रयोगों द्वारा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस प्रकार की बहुत से अस्तित्वों का उल्लेख दर्शन शास्त्र की पुस्तकों में विस्तार से मौजूद है। उदाहरण स्वरूप स्वंय आत्मा या फिर ज्ञान के अस्तित्व को हम मानते हैं किंतु इसे छूकर या सूंघ कर महसूस नहीं कर सकते अर्थात प्रयोगशाला में ज्ञान का पता

नहीं लगाया जा सकता और न ही आत्मा को सिद्ध किया जा सकता है। आत्मा जो भौतिकता से परे है उस की उपस्थिति का सब बड़ा प्रमाण सच्चे सपनें हैं और बहुत से महापुरुषों और तपस्वियों तथा ईश्वरीय दूतों द्वारा पेश किये गये चमत्कार हैं जो साधारण मनुष्य के लिए संभव नहीं हैं यह ईश्वरीय दूतों के चमत्कार ऐतिहासिक रूप से सिद्ध हैं और इन्हें कहानियां नहीं समझा जा सकता है। इस प्रकार से अभौतिक अस्तित्व की उपस्थिति सिद्ध होती है और इस प्रकार से ईश्वर के बारे में भौतिक विचार धारा का तर्क निराधार हो जाता है।

भौतिक विचार धारा का दूसरा सिद्धान्त यह है कि पदार्थ सदैव से था और सदैव रहेगा और उसे पैदा नहीं किया जा सकता और उसे किसी कारक की आवश्यकता नहीं है और वास्तव में वही स्वयंभू अस्तित्व है।

इस सिद्धान्त में पदार्थ के सदैव से होने और अनन्तकाल तक रहने पर बल दिया गया है और उसके बाद यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पदार्थ की रचना

नहीं की जा सकती अर्थात किसी ने उसकी रचना नहीं की है वह स्वंय ही अस्तित्व में आया है किंतु पहली बात तो यह है कि प्रयोग व विज्ञान की दृष्टि से पदार्थ का ऐसा होना सिद्ध ही नहीं है क्योंकि प्रयोग की पहुंच सीमित होती है और प्रयोग द्वारा किसी भी वस्तु के लिए यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि वह अनन्त तक रहने वाली है अर्थात किसी भी प्रकार का प्रयोग, स्थान व काल की दृष्टि से से ब्रह्मांड के अनन्त होने को सिद्ध नहीं कर सकता।

दूसरी बात यह है कि यदि मान भी लिया जाए कि पदार्थ अन्नत काल तक रहने वाला है तो भी इसका अर्थ यह नहीं होगा कि उसे किसी पैदा करने वाले की आवश्यकता नहीं है जैसाकि एक अनन्तकालीन व्यवस्था के गतिशील होने को यदि स्वीकार किया जाए तो उस व्यवस्था को अनन्तकाल की दशा तक पहुंचाने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार से यह नहीं माना जा सकता है कि पदार्थ के अनन्तकालिक होने की दशा, उसे उस दशा में पहुंचाने वाली ऊर्जा की आवश्यकता से ही मुक्त कर देती है और यदि यह भी मान लिया जाए कि पदार्थ की किसी ने रचना नहीं की है तो भी इस का अर्थ कदापि यह नहीं होता कि पदार्थ इस कारण स्वंयभू अस्तित्व वाला हो जाएगा क्योंकि पिछली चर्चाओं में हम

यह सिद्ध कर चुके हैं कि पदार्थ किसी भी दशा में स्वंयंभू अस्तित्व नहीं हो सकता।

## सबका पालनहार एक है

अब तक हमने जिस ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध किया है और उसके जो गुण बताए हैं वह कितने ईश्वर हैं? अर्थात ईश्वर एक है या कई?

इस बारे में कि अनेकेश्वरवादी विचार धारा या कई ईश्वरों में विश्वास किस प्रकार से मनुष्य में पैदा हुआ, विभिन्न दृष्टिकोण पाए जाते हैं। यह सारे दृष्टिकोण समाज शास्त्रियों ने पेश किये हैं किंतु इसके लिए कोई ठोस प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया।

शायद यह कहा जा सकता है कि अनेकेश्वरवाद की ओर झुकाव और कई ईश्ववरों में विश्वास का प्रथम कारण , आकाश व धरती में पायी जाने वाली वस्तुओं और प्राकृतिक प्रक्रियाओं में पायी जाने वाली विविधता रही है और यह विविधता इस बात का कारण बनी कि कुछ लोग यह समझनें लगें कि हर प्रक्रिया का एक विशेष ईश्वर है और उसी के नियंत्रण में वह प्रक्रिया चलती और आगे बढ़ती है। जैसा कि संसार के बहुत से लोगों का यह मानना है कि भलाइयों का ईश्वर अलग है और बुराईयों का ईश्वर अलग है। इस प्रकार के लोगों ने इस सृष्टि के लिए दो स्रोतों को मान लिया।

इसी प्रकार सूर्य और चंद्रमा के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव और धरती में विभिन्न वस्तुओं व रचनाओं के विकास व अस्तित्व के लिए उनकी भूमिका के दृष्टिगत यह धारणा बनी कि यह सूर्य और चंद्रमा, मनुष्य के एक प्रकार से पालनहार हैं।

इसी प्रकार देखे और महसूस किये जाने योग्य ईश्वर में मनुष्य की रूचि भी इस बात का कारण बनी कि लोग विभिन्न प्रकार की देखी और महसूस की जाने वाली वस्तुओं को ईश्वर के समान मानें और उनकी पूजा करें और फिर यह चलन इतना व्यापक हुआ कि अज्ञानी लोग, इन्हीं चिन्हों और वस्तुओं को ईश्वर समझ बैठे और इस प्रकार से उनकी कई पीढ़ियां गुज़र गयीं और धीरे- धीरे हर जाति व राष्ट्र ने अपनी धारणाओं व आस्थाओं के आधार पर अपने लिए विशेष प्रकार के देवता और विशेष प्रकार के संस्कार बना लिए ताकि इस प्रकार से एक ओर ईश्वर के प्रति अपनी आस्था प्रकट करने की भावना शांत कर सकें और दूसरी ओर ईश्वर की सच्ची उपासना के कड़े नियमों से बचकर उसकी इस प्रकार से उपासना करने का अवसर भी प्राप्त कर लें जिससे उनकी आतंरिक इच्छाओं की पूर्ति भी हो सके और उसे पवित्रता व धार्मिक संस्कारों का नाम भी दिया जा सके। यही कारण है आज भी बहुत से धर्मों में नाच- गाना तथा शराब पीकर अश्लील कार्य धार्मिक संस्कारों का भाग समझा जाता है।

अनेकेश्वरवाद का एक अन्य कारण यह भी है कि समाज पर अपना अधिकार और वर्चस्व जमाने का प्रयास करने वाले भी आम लोगों में इस प्रकार की विचार-धारा व धारणा के जन्म लेने का कारण बने हैं इसी लिए समाज पर अधिकार की इच्छा रखने वाले बहुत से लोगों ने आम लोगों के मध्य अनेकेश्वरवाद की धारणा पैदा की और स्वंय को पूज्य और देवता समान बना कर पेश किया ताकि धर्म का सहारा लेकर लोगों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर सकें। राजा- महाराजाओं की पूजा इसी भावना के अंतर्गत आंरभ हुई जो बाद की पीढ़ियों के लिए देवता बन गये जैसा कि हम प्राचीन चीन, भारत, ईरान और मिस्र में इसका उदाहरण देख सकते हैं।

इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक ईश्वर के स्थान पर एक साथ कई ईश्वरों की उपासना या अनेकेश्वरवाद के जन्म लेने के बहुत से कारण हैं अर्थात कभी अज्ञानता के कारण लोगों ने कई ईश्वरों में विश्वास किया तो कभी समाज के प्रभावी लोगों के षडयन्त्र के कारण तो कभी प्रकृति की विविधताओं से प्रभावित होकर इस सृष्टि के लिए कई पालनहार मान लिया।

यदि इतिहास पर गहरी नज़र डाली जाए तो कई ईश्वर में विश्वास ने सदा ही समाज के विकास में बाधा उत्पन्न की है और यही कारण है कि हम देखते हैं कि ईश्वरीय दूतों के संघर्षों का बड़ा भाग, अनेकेश्वर वादियों के विरुद्ध लड़ाई से विशेष रहा है। क्योंकि ईश्वर के अतिरिक्त जो भी ईश्वर थे वे मानव निर्मित थे और चूंकि उन्हें बनाने वालों ने अपने व्यक्तिगत हितों को दृष्टिगत रखा था इस लिए यह प्रक्रिया किसी भी स्थिति में समाज के हित में नहीं हो सकती थी।

इस प्रकार से अनेकेश्वरवादी मत में ईश्वर के अतिरिक्त एक या कई अन्य लोगों के पालनहार होने में भी विश्वास रखा जाता है यहां तक कि बहुत से अनकेश्वरवादी विश्व के लिए एक ही रचयिता होने में विश्वास रखते थे और वास्तव में वे विश्व की रचना के मामले में एकीश्वरवादी विचारधारा में आस्था रखते थे किंतु उसके बाद के चरणों में अर्थात दूसरी श्रेणी में देवताओं को मानते थे अर्थात यह कहते थे कि इस सृष्टि का रचनाकार एक ही है किंतु उसने अपने कामों में सहायता के लिए कुछ अन्य लोगों को पैदा किया है जो संसार के

विभिन्न कामों में ईश्वर की सहायता करते हैं इन्हें विभिन्न लोगों अलग- अलग नामों से याद करते हैं। ।

पिछली चर्चाओं में हम विस्तार से यह बता चुके हैं कि वास्तिवक रचनाकर और पालनहार केवल एक ही हो सकता है और यह विशेषता केवल एक ही अस्तित्व की हो सकती है अर्थात रचयिता और पालनहार होना केवल एक ही अस्तित्व की विशेषता हो सकती है और यह दोनों गुण अर्थात रचयिता और पालनहार ऐसे गुण हैं जो एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते अर्थात यह संभव नहीं है कि विश्व का रचयिता कोई और हो और लोगों का पालनहार कोई अन्य और जो लोग इस प्रकार का विश्वास रखते हैं उन्होंने इसमें पाए जाने वाले विरोधाभास की ओर ध्यान नहीं दिया। ईश्वर के एक होने के बहुत से प्रमाण हैं जिनमें से कुछ का हम वर्णन करेंगें किंतु अगली चर्चा में।

# ईश्वर के एक होने के तर्क

ईश्वर एक है इसके बहुत से तर्क प्रस्तुत किये गये हैं और ईश्वर एक है या कई यह विषय अत्यधिक प्राचीन है और इस पर बहुत चर्चा हो चुकी है और जैसा कि हम ने पिछले कार्यक्रम में बताया था ईश्वरीय दूतों के संघर्ष का बहुत बड़ा भाग अनेकेश्वरवाद में विश्वास रखने वालों के विरुद्ध था।

इस कार्यक्रम में हम ईश्वर के एक होने के कुछ सरल प्रमाण पेश कर रहे हैं । जैसे यदि यह मान लिया जाए कि इस सृष्टि की रचना २ या कई ईश्वरों ने मिल कर की है तो इस धारणा के लिए कुछ दशाएं होगी या तो विश्व की हर वस्तु को उन सब ने मिल कर बनाया होगा या फिर कुछ वस्तुओं को एक ने और कुछ अन्य को दूसरे ने बनाया होगा। या फिर समस्त रचनाओं को किसी एक ईश्वर ने ही बनाया होगा किंतु कुछ अन्य देवता संसार को चलाते होंगे किंतु यदि हम यह मान लें कि हर रचना को कई ईश्वरों ने मिल कर बनाया है तो यह संभव नहीं है क्योंकि इस का अर्थ यह होगा कि विश्व की एक वस्तु को २ या कई देवताओं ने

मिल कर बनाया है और हर एक ने एक वस्तु को बनाया है जिससे से हर वस्तु के कई अस्तित्व हो जाएंगें जबकि एक वस्तु का एक ही अस्तित्व होता है अन्यथा वह एक वस्तु नहीं होगी किंतु यदि यह माना जाए कि कई देवताओं में से प्रत्येक ने किसी वस्तु विशेष या कई वस्तुओं की रचना की है तो इस धारणा का अर्थ यह होगा कि हर रचना केवल अपने रचनाकार के बल पर अस्तित्व में आई होगी और उसे अपने अस्तित्व के लिए केवल अपने रचनाकार की ही आवश्यकता होगी अर्थात केवल उसी ईश्वर की आवश्यकता होगी जिसने उसे बनाया है किंतु इस प्रकार की आवश्यकता सारी वस्तुओं को बनाने वाले अंतिम रचनाकार की होगी जो वास्तव में ईश्वर है।

दूसरे शब्दों में संसार के लिए कई ईश्वर मानने का अर्थ यह होगा कि संसार में कई प्रकार की व्यवस्थाएं हैं जो एक दूसरे के अलग- अलग भी हैं जब कि संसार की एक ही व्यवस्था है और सारी प्रक्रियाएं एक दूसरे से जुड़ी हैं और एक दूसरे पर अपना प्रभाव भी डालती हैं और उन सब को एक दूसरे की आवश्यकता होती है इसी प्रकार पहली प्रक्रिया अपने बाद की प्रक्रिया से संबंध रखती है और पहले की प्रत्येक प्रक्रिया अपने बाद की प्रक्रिया के अस्तित्व का कारण होती है इस प्रकार से

ऐसी रचना जिसकी विभिन्न प्रक्रियाएं एक दूसरे से जुड़ी हों और सारी प्रक्रियाएं और व्यवस्थाएं एक व्यापक व्यवस्था के अंतर्गत हों तो उन का कई नहीं एक ही रचनाकार हो सकता है अर्थात इस प्रकार से व्यस्थित परिणामों व प्रक्रियाओं का एक ही कारक हो सकता है और वह कई कारकों का परिणाम नहीं हो सकता किंतु यदि यह माना जाए कि वस्तुतः ईश्वर एक ही है किंतु उसकी सहायता के लिए और संसार को चलाने के लिए कई अन्य देवता मौजूद हैं तो यह भी सही नहीं है क्योंकि हर वस्तु अपने पूरे अस्तित्व के साथ अपने कारक से संबंधित है और उसका अस्तित्व उसी के सहारे पर निर्भर होता है और किसी अन्य अस्तित्व में उसे प्रभावित करने की शक्ति नहीं होती अलबत्ता यहां पर प्रभावित करने से वह प्रभाव आशय नहीं है जो वस्तुएं एक दूसरे पर डालती हैं ।

इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि यदि ईश्वर के सहायकों की बात मान ली जाए तो फिर इसकी दो दशाएं होंगी। एक यह कि ईश्वर को इन सहायकों की आवश्यकता होती है या उसे उनकी आवश्यकता नहीं होती। अब यदि हम यह मान लें कि ईश्वर को सहायकों की आवश्यकता होती है तो फिर वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि सहायता की आवश्यकता उसे होती है जो अकेले की कोई काम

करने की क्षमता नहीं रखता और हम पहले की यह चर्चा कर चुके हैं कि ईश्वर आवश्यकता मुक्त और हर काम करने की क्षमता रखता है किंतु यदि यह माना जाए कि ईश्वर को सहायकों की आवश्यकता नहीं हैं किंतु फिर भी उसके सहायक हैं तो फिर यह अकारण काम होगा अर्थात ईश्वर ने सहायकों की आवश्यकता न होने के बावजूद कुछ लोगों को अपनी सहायता के लिए रखा है तो इस से यह सिद्ध होगा कि ईश्वर ने एसा काम किया है जिसकी आवश्यकता ही नहीं थी और यह ईश्वर के लिए सही नहीं है क्योंकि वह केवल वही काम करता है जिसकी आवश्यकता होती है अनाश्वयक काम मनुष्य तो कर सकता है किंतु ईश्वर नहीं कर सकता।

यदि हम यह मानें कि ईश्वर के कुछ लोग सहायक हैं तो फिर यह प्रश्न उठता है कि उनकी किसने रचना की? यदि ईश्वर ने ही उनकी रचना की है तो फिर उन सहायकों का अस्तित्व, ईश्वर पर निर्भर होगा तो फिर एसे लोग साधन हो सकते हैं, ईश्वर के सहायक नहीं। वैसे हम बता चुके हैं कि सहायता की आवश्यकता अक्षमता व कमज़ोरी का चिन्ह है किसी कंपनी या संस्था में सहायक इस लिए होते हैं क्योंकि सारे कामों की देखभाल महानिदेशक अकेले नहीं कर सकता अर्थात

उसमें यह क्षमता नहीं होती कि वह सारे छोटे- बड़े काम अकेले की करे इसलिए सहायकों की नियुक्ति की जाती है किंतु ईश्वर के लिए हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि कोई काम उसके लिए संभव नहीं हैं या अकेले वह इतने सारे काम नहीं कर सकता इस लिए उसने अपने लिए कुछ सहायक रखे हैं। क्योंकि ईश्वर की तुलना मनुष्य से नहीं की जा सकती और न ही मनुष्य के काम काज की शैली की ईश्वरीय व्यवस्था से तुलना की जा सकती है।

इस लिए हमारा मानना है कि ईश्वर एक है ऐसा एक जो कभी दो नहीं हो सकता। अकेला है न उसका कोई भागीदार है और न ही सहायक। न उसका कोई पिता है और न ही वह किसी का पिता है। न उसकी किसी से नातेदारी है और न ही उसका कोई परिवार अथवा पत्नी है यह सब मनुष्य की विशेषताएं हैं और ईश्वर के बारे में इस प्रकार की बातों की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

## कर्मो का ज़िम्मेदार मनुष्य

ईश्वर मुख्य कारक है और वही सब कुछ करता है और उसकी अनुमति के बिना एक पत्ता की नहीं खड़कता यह ऐसे वाक्य हैं जो विदित रूप से बिल्कुल सही लगते हैं किंतु इन वाक्यों और उनके अर्थों को समझने के लिए बहुत अधिक चिंतन व गहराई की आवश्यकता है। अर्थात क्रियाओं पर ईश्वर का प्रभाव कैसा है और किस सीमा तक ईश्वर उस प्रभाव में हस्तक्षेप करता है और किस सीमा तक भौतिक कारक उसमें प्रभावी होते हैं ये बहुत ही गूढ़ विषय हैं और इस प्रभाव के संतुलन को समझने के लिए जहां एक ओर बौद्धिक विकास व विलक्षण बुद्धि चाहिए वहीं इस संतुलन और प्रभाव की सीमा का सही रूप से वर्णन भी आवश्यक है। ईश्वर भौतिक प्रक्रिया पर किस सीमा तक प्रभाव डालता है इस विषय को सही रूप से न समझने के कारण बहुत से लोग पथभ्रष्ट हो गये और उन्होंने संसार की हर क्रिया और प्रक्रिया को पूर्ण रूप से केवल ईश्वर से संबंधित समझ लिया और यह कहा कि ईश्वर के आदेश के बिना कोई पत्ता भी नहीं हिलता अर्थात उन लोगों ने भौतिक कारकों के प्रभाव का सिरे से इन्कार कर दिया अर्थात यह दर्शाने का प्रयास किया कि उदाहरण स्वरूप ईश्वर चाहता है कि आग रहे तो गर्मी रहे और यदि कोई खाना खा ले तो उसकी भूख समाप्त हो जायेगी तो चूंकि ईश्वर ऐसा चाहता

है कि इस लिए गर्मी उत्पन्न होती है और भूख ख़त्म हो जाती है और गर्मी उत्पन्न करने तथा भूख मिटाने में आग और खाने की कोई भूमिका व प्रभाव नहीं है।

इस प्रकार की सोच व विचार धारा के कुप्रभाव उस समय प्रकट होते हैं जब हम मनुष्य के कामों के दायित्व के बारे में बात करें। अर्थात यदि हम यह बात पूर्ण रूप से मान लें कि संसार में हर काम ईश्वर से संबंधित है और वही हर काम करता है तो फिर मनुष्य और उसके कर्म के मध्य कोई संबंध नहीं रहता अर्थात मनुष्य जो कुछ करता है उसकी उस पर ज़िम्मेदारी नहीं होती।

दूसरे शब्दों में इस ग़लत विचारधारा का एक परिणाम यह होगा कि फिर मनुष्य के किसी काम में उसकी इच्छा का कोई प्रभाव नहीं होगा जिस के परिणाम स्वरूप मनुष्य अपने कामों का ज़िम्मेदार भी नहीं होगा और इस प्रकार से मनुष्य की सब से महत्वपूर्ण विशेषता अर्थात चयन का अधिकार का इन्कार हो जाएगा और हर

वस्तु और हर क़ानूनी व्यवस्था खोखली हो जायेगी तथा धर्म व धार्मिक शिक्षाओं का भी कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। क्योंकि यदि मनुष्य को अपने कामों में किसी प्रकार का अधिकार नहीं होगा और सारे काम ईश्वरीय आदेश व इच्छा से होंगे तो फिर दायित्व व धार्मिक प्रतिबद्धता तथा पाप व पुण्य का कोई अर्थ ही नहीं रह जाएगा और इस से पूरी धार्मिक व्यवस्था पर ही प्रश्न चिन्ह लग जाएगा। अर्थात उदाहरण स्वरूप चोरी करना या किसी की हत्या करना धार्मिक रूप से महापाप है और इस पर कड़ा दंड है किंतु यदि हम यह मान लें कि ईश्वर के आदेश के बिना कोई पत्ता नहीं हिलता और मनुष्य के सारे काम ईश्वर के आदेश से होते हैं तो फिर चोर और हत्यारा यह कह सकता है कि यदि मैंने चोरी की या हत्या की तो इसकी ज़िम्दारी मुझ पर नहीं है ईश्वर पर है उसने मुझे से चोरी करवाई और हत्या करवाई तो फिर यदि ज़िम्मेदारी नहीं होगी तो उसे दंड भी नहीं दिया जा सकता इसी प्रकार पुण्य करने वाले को यदि प्रतिफल दिया जाएगा और स्वर्ग में भेजा जाएगा तो भी यह आपत्ति हो सकती है कि यदि उसने अच्छा काम किया तो फिर उसमें उसका क्या कमाल है क्योंकि ईश्वर ने चाहा कि वह अच्छा काम करे इस लिए उसने अच्छा काम किया तो इसका फल उसे क्यों मिले?

इस्लाम में सृष्टि की रचना का उद्देश्य, मनुष्य की रचना के लिए भूमिका तैयार करना बताया गया है ताकि वह अपनी इच्छा से किये जाने वाले कामों द्वारा ईश्वर की उपासना करते और इस प्रकार पारितोषिक और ईश्वर से निकटता का बड़ा इनाम पाए किंतु यदि मनुष्य के पास कोई अधिकार नहीं होगा और वह हर काम विवशता में और कठपुतली की भांति करेगा तथा ईश्वरीय आदेश से करता होगा तो फिर उसे किसी भी प्रकार का इनाम या पुण्य प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा जिससे सृष्टि का उद्देश्य ही ग़लत हो जाएगा और पूरा संसार कठपुतली के खेल की भांति होकर रह जाएगा जहां मनुष्य कठपुतली की भांति चलता- फिरता और काम करता है और उसके कुछ कामों पर उसकी सराहना की जाती है और कुछ कामों पर दंड दिया जाता है।

अब प्रश्न यह है कि यह विचारधारा मनुष्य में पैदा कैसे हुई और इसका मुख्य कारण क्या है? तो इसके उत्तर में हम कहेंगे कि इस प्रकार की विचारधारा का मुख्य कारण, अत्याचारी शासनों के राजनीतिक उद्देश्य हैं क्योंकि यह शासन इस प्रकार की विचारधारा द्वारा, अपने गलत कार्यों का औचित्य दर्शाते थे और अज्ञानी लोगों को अपने वर्चस्व व राज को स्वीकार करने तथा उन्हें प्रतिरोध व संघर्ष से

रोकने पर विवश करते थे। इसी लिए इस विचारधारा को राष्ट्रों को भ्रमित करने का मुख्य साधन माना जा सकता है।

दूसरी ओर, कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्हें इस विचारधारा की कमज़ोरियों का पता चल गया था किंतु न तो उन में पूर्ण एकेश्वरवाद पर विश्वास था और न ही इस विचारधारा को नकारने की क्षमता व ज्ञान था और न ही उन्होंने पैग़म्बरे इस्लाम के परिजनों की शिक्षाओं से लाभ उठाया इसी लिए उन्होंने इस विचारधारा को गलत मानते हुए इसे पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया और इसकी विपरीत दशा को मान लिया अर्थात वह यह मानने लगे कि मनुष्य के कार्य पूर्ण रूप से उस से प्रभावित होते हैं और ईश्वर का उससे कोई संबंध नहीं होता और न ही वह हस्तक्षेप करता है अर्थात उन्होंने ईश्वर को मनुष्य के कामों से पूर्ण रूप से असंबंधित मान लिया और हर काम ईश्वर के आदेश से होता है, की विचार धारा के विपरीत यह कहा कि कोई भी काम ईश्वर के आदेश से नहीं होता बल्कि सारी क्रियाएं और प्रक्रियाएं पूर्ण रूप से मनुष्य से संबंधित और वही उन का पूर्ण रूप से कारक होता है। पहली विचार धारा की भांति यह भी गलत विचार धारा है क्योंकि इसका अर्थ यह होगा कि ईश्वर मनुष्य के कामों में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप

नहीं करता बल्कि नहीं कर सकता और उसने इस सृष्टि की रचना करके उसे अपने हाल पर छोड़ दिया है और जो कुछ हो रहा है वह स्वंय ही एक व्यवस्था के अंतर्गत है और ईश्वर चाह कर भी उसमें कुछ नहीं कर सकता। यह विचारधारा भी सही नहीं है क्योंकि इस से ईश्वर की क्षमता व महानता पर प्रश्न चिन्ह लगता है।

पैग़म्बरे इस्लाम के परिजनों ने जो ज्ञान के वास्तविक स्रोत हैं उन्होंने तीसरा मार्ग सुझाया है और इन दोनों विचारधारों के बीच का मार्ग अपनाया है जिसमें इन दोनों विचार धाराओं की ख़राबियां नहीं हैं किंतु उस पर हम अपने अगले कार्यक्रम में चर्चा करेंगे।

## मनुष्य और परिपूर्णता

इससे पहले वाली चर्चा में हमने कहा था कि कर्मों के संबंध में पैग़म्बरे इस्लाम के परिजनों ने तीसरा मार्ग सुझाया है अर्थात न ही ईश्वर मनुष्य के समस्त कामों में पूर्ण रूप से हस्तक्षेप करता है और न ही पूर्ण रूप से उसने समस्त कामों को मनुष्य के ऊपर छोड़ दिया है और चूंकि यह बहुत ही गूढ़ चर्चा है इस लिए यदि इस विषय को कोई अच्छी तरह से समझना चाहता है तो उसे बहुत ध्यान रखना होगा।

तीसरा मार्ग यह है कि मनुष्य अपने कामों में न तो पूरी तरह से स्वतंत्र है और न ही पूर्ण रूप से विवश बल्कि कुछ कामों में किसी सीमा तक स्वतंत्र है और कुछ काम पूरी तरह से उसकी क्षमता से बाहर हैं। एक व्यक्ति ने इमाम जाफ़रे सादिक अलैहिस्सलाम से पूछा कि यह जो आप कहते हैं कि मनुष्य अपने कुछ कामों में स्वतंत्र है और कुछ में नहीं तो इसका कोई उदाहरण दे सकते हैं? इमाम ने उससे कहा कि अपना दायां पैर उठा कर खड़े हो जाओ उसने ऐसा ही किया फिर आप ने कहा बायां पैर उठा कर खड़े हो जाओ वह बाया पैर उठा कर खड़ा हो गया फिर उससे कहा अब अपने दोनों पैर उठा कर खड़े हो जाओ तो उसने कहा यह कैसे हो

सकता? इमाम ने कहा स्वतंत्रता व विवशता के मध्य के मार्ग का अर्थ यही है। यह एक उदाहरण था अब हम इस विषय पर विशेष रूप से चर्चा आरंभ कर रहे हैं।

मनुष्य स्वंय सोच कर काम करता है या कठपुतली की भांति है इसके लिए सब से पहले यह स्पष्ट होना चाहिए कि मनुष्य में इरादा और निर्णय लेने की शक्ति है या नहीं। निर्णय लेने की शक्ति, उन विषयों में से है जिन पर मनुष्य को पूरा विश्वास है क्योंकि इस विषय को हर व्यक्ति अपने आभास द्वारा अपने भीतर महसूस करता है जैसा कि हर व्यक्ति अपनी मनोदशाओं को जानता है यहां तक कि यदि उसे किसी विषय के बारे में शंका होती है तो वह अपने भीतर मौजूद ज्ञान द्वारा उस शंका से अवगत होता है और उसे अपने भीतर शंका के बारे में किसी प्रकार की शंका नहीं होती।

इसी प्रकार हर कोई अपने भीतर थोड़ा सा ध्यान देने के बाद यह समझ जाता है कि वह बात कर सकता है या नहीं, अपना हाथ हिला सकता है या नहीं, खाना खा सकता है या नहीं।

किसी काम को करने का फैसला कभी शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए होता है उदाहरण स्वरूप एक भूखा व्यक्ति खाने का फैसला करता है या प्यासा व्यक्ति पानी पीने का इरादा करता है किंतु कभी-कभी मनुष्य का इरादा और निर्णय बौद्धिक इच्छाओं व उच्च मानवीय आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए होता है जैसाकि एक रोगी स्वास्थ्य लाभ के लिए कड़वी दवांए पीता है और स्वादिष्ट खानों से परहेज़ करता है या अध्ययन करने वाला और शिक्षा प्राप्त करने वाला व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति और वास्तविकताओं की खोज के लिए, भौतिक सुखों की ओर से आंख बंद कर लेता है और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कठिनाइयां सहन करता या साहसी सैनिक अपने देश की रक्षा जैसे उच्च लक्ष्य के लिए अपने प्राण भी न्यौछावर कर देता है। तो इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि उद्देश्य उच्च हो तो उसके मार्ग में कठिनाईयों का कोई महत्व नहीं होता। वास्तव में मनुष्य का महत्व उस समय प्रकट होता है जब उस की विभिन्न इच्छाओं के मध्य टकराव की

स्थिति उत्पन्न हो जाए और वह नैतिक गुणों और सही अर्थों में मानवता की चोटी पर पहुंचने के लिए अपनी शारीरिक इच्छाओं व आवश्यकताओं की उपेक्षा करता है और यह तो स्पष्ट है कि हर काम, जितने मज़बूत इरादे और चेतनापूर्ण चयन के साथ किया जाता है वह आत्मा के विकास या पतन में उतना ही प्रभावी होता है तथा दंड या पुरस्कार का उसे उतना ही अधिक अधिकार होता है।

अलबत्ता शारीरिक इच्छाओं के सामने प्रतिरोध की क्षमता सब लोगों में हर वस्तु के प्रति समान नहीं होती किंतु हर व्यक्ति थोड़ा बहुत ईश्वर की इस देन अर्थात स्वतंत्र इरादे का स्वामी होता ही है और जितना अभ्यास करता है उसकी यह क्षमता उतनी ही बढ़ती जाती है। इस आधार पर मनुष्य में इरादे की उपस्थिति के बारे में कोई शंका नहीं है और इस प्रकार की स्पष्ट और महसूस की जाने वाली भावना के बारे में कोई शंका होनी भी नहीं चाहिए और यही कारण है कि मनुष्य में इरादे और स्वतंत्रता के विषय पर सभी ईश्वरीय धर्मों में बल दिया गया है और इसे सभी ईश्वरीय धर्मों और नैतिक मतों में एक वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि इस विशेषता के बिना कर्तव्य, दायित्व, आलोचना, दंड, अथवा पुरस्कार आदि की कोई गुंजाईश ही नहीं रहेगी।

इस प्रकार से यह सिद्ध होता है कि इरादा और निर्णय की शक्ति हर मनुष्य में पायी जाती है और यह शक्ति इतनी स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति थोड़ा सा ध्यान देकर इसे महसूस कर सकता है किंतु इसके बावजूद कुछ लोग मनुष्य में इरादे और निर्णय लेने की क्षमता व शक्ति का इन्कार करते हुए कहते हैं कि मनुष्य अपने कामों में विवश है और उसके सारे काम ईश्वर करता है वह तो केवल कठपुतली है इस प्रकार की स्पष्ट विशेषता के इन्कार और मनुष्य में अधिकार व इरादे के न होने में विश्वास का कारण, कुछ शंकाएं है जिन का निवारण किया जा सकता है।

## महान ईश्वर सर्वज्ञाता है

जो लोग यह मानते हैं कि मनुष्य का हर काम ईश्वर के आदेश से होता है और मनुष्य में अपना कोई इरादा नहीं होता और वह अपने इरादे से कोई काम नहीं कर सकता उनका कहना है कि मनुष्य का इरादा आंतिरक रूचियों व रुझानों से बनता है और यह आंतरिक रूचियां और रुझान का पैदा होना स्वंय मनुष्य के बस में नहीं है और न ही जब उसमें बाहरी कारकों के कारण उबाल आता है तो उस पर मनुष्य का बस होता है इसलिए इसमें अधिकार व चयन की गुंजाइश नहीं बचती। उनका यह कहना है कि जब इरादा पैदा करने वाले कारक मनुष्य के बस में नहीं हैं तो फिर इरादे को उस के अधिकार के अंतर्गत आने वाला विषय कैसे कहा जा सकता है।

इस शंका के उत्तर में यह कहना चाहिए कि रुझान या रूचि पैदा होना इरादे और फैसले की भूमिका प्रशस्त करता है किसी काम के इरादे को बनाता नहीं जिसे रूचि व रूझान का ऐसा परिणाम समझा जाए जो मनुष्य से प्रतिरोध या विरोध की क्षमता ही छीन ले। अर्थात शंका करने वालों ने जो यह कहा है कि इरादे का आधार रूचि व रूझान होता है, सही नहीं है रूचि व रूझान और बाहरी कारक इरादे की भूमिका प्रशस्त करते हैं। इरादे को अनिवार्य नहीं बनाते अर्थात यह सही नहीं है

कि कहा जाए जब भी रूझान व रूचि होती है इरादा भी बन जाता है। इरादा किसी भी प्रकार से रूचि व रूझान का अनिवार्य परिणाम नहीं है बल्कि उसके लिए परिस्थितियां अनुकूल करता है इसीलिए देखा गया है कि कभी- कभी रूचियां होती हैं, परिस्थितियां होती हैं रूझान भी होता किंतु मनुष्य फैसला नहीं लेता अर्थात इरादा नहीं करता क्योंकि वास्तविकता है यह है कि इरादे के लिए केवल रूचि व रुझान ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि इस के बाद मनुष्य चिंतन-मनन करता है सोच-विचार करता है उसके बाद यदि सही समझता है तो फिर इरादा और फैसला करता है। इस प्रकार से यह कहना सही नहीं है कि मनुष्य परिस्थितियों और रूचियों के आगे इरादा करने पर विवश होता है बल्कि वह स्वतंत्र होता है इसी लिए कभी-कभी परिस्थितियों और रूचियों के विपरीत भी इरादा करता है और निर्णय लेता है।

मनुष्य में इरादे व संकल्प की शक्ति में विश्वास रखने वालों पर जो शंकाए की जाती हैं उनमें से एक यह भी है कि वे कहते हैं कि ज्ञान- विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रमाणित विषयों के आधार पर अब यह सिद्ध हो चुका है कि जेनेटिक कारक तथा विशेष प्रकार के आहारों और दवाओं के कारण हार्मोन्ज़ के स्राव तथा समाजिक व मनुष्य के आसपास के वातावरण जैसे बहुत से कारक मनुष्य में

किसी काम के इरादे को बनाने में प्रभावी होते हैं और मनुष्य के व्यवहारों में अंतर भी इन्हीं कारकों के कारण होता है और धार्मिक शिक्षाओं में भी इस विषय की पुष्टि की गयी है इस लिए यह कहना सही नहीं है कि मनुष्य अपने इरादे में पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता है।

इस शंका को अधिक स्पष्ट करते हुए हम कहेंगे कि शंका करने वालों का यह कहना है कि मनुष्य जिस समाज में रहता है उसकी विशेष परिस्थितियां और उसका अपना परिवार और जेनेटिक विशेषताएं उसके इरादों को प्रभावित करती हैं उदाहरण स्वरूप पश्चिम में रहने वाला व्यक्ति बहुत से ऐसे काम करने का इरादा करता है जिसके बारे में पूरब में रहने वाला व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। इसी प्रकार घर परिवार भी मनुष्य के इरादे में प्रभावित होते हैं इस लिए यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य इरादे में पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। अर्थात मनुष्य के कार्य को पूर्ण रूप से स्वतंत्रता के साथ किये गये इरादे का परिणाम नहीं माना जा सकता।

इस शंका का निवारण यह है कि स्वतंत्र इरादे व इच्छा को स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि उस में यह तत्व प्रभावी नहीं होते बल्कि इस का अर्थ यह है कि इन सारे तत्वों व कारकों की उपस्थिति के साथ, मनुष्य प्रतिरोध कर सकता है और विभिन्न प्रकार की भावनाओं व रूचियों के घेरे में किसी एक का चयन कर सकता है और यही चयन कर सकने की शक्ति इस बात को सिद्ध करती है कि मनुष्य का अपना इरादा होता है।

अलबत्ता कभी- कभी इन कारकों में से कुछ कारण ऐसे भी होते हैं जो मनुष्य को अपने विरुद्ध निर्णय लेने से रोकते हैं उदारहण स्वरूप लोभ और भविष्य की चिंता मनुष्य को दान से रोकती है या क्रोध व बदला की अत्यधिक तीव्र भावना मनुष्य को संयम से रोकती से रोकती है और इसी लिए इन कारकों का विरोध करने के निर्णय लेने पर पारितोषिक और प्रतिफल भी अधिक मिलता है। इसी प्रकार क्रोध और भावनाओं के आवेग में किये जाने वाले अपराध का दंड, पूर्ण रूप से शांत भाव व सोच विचार के साथ किये जाने वाले अपराध के दंड की तुलना में हल्का होता है। इस प्रकार से हम यह तो कह सकते हैं कि परिस्थितियां और कारक, इरादों में प्रभावी होते हैं किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि परिस्थितियां

और कारक पूर्ण रूप से इरादे के पैदा होने का करण और उसका अपरिहार्य परिणाम होते हैं।

इरादे पर मनुष्य के अधिकार पर की जाने वाली एक शंका यह भी है कि कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर विश्व की हर वस्तु से यहां यहां तक कि मुनष्य के समस्त कार्यों से इस से पूर्व के वह कोई काम करे, अवगत होता है और ईश्वर के ज्ञान में गलती नहीं हो सकती तो फिर सारी घटनाए ईश्वर के सदैव से रहने वाले ज्ञान के अनुसार घटित होती हैं और इस के विपरीत कुछ नहीं हो सकता इस आधार पर मनुष्य के अधिकार व चयन का कोई प्रश्न ही नहीं है। अर्थात जब ईश्वर को समस्त घटनाओं और मनुष्य के समस्त इरादों का ज्ञान है तो फिर इस का यह अर्थ हुआ कि मनुष्य उस से हट कर कुछ नहीं कर सकता इस लिए यह कहना सही नहीं है कि मनुष्य अपने इरादे में स्वतंत्र होता है।

इस शंका का उत्तर इस प्रकार से दिया जाता है कि यह सही है कि ईश्वर हर घटना का जिस प्रकार से वह घटित होती है ज्ञान रखता है और मुनष्य का हर काम भी उसके अधिकार के दायरे में रहते हुए ईश्वर के ज्ञान में होता है किंतु इसका कदापि यह अर्थ नहीं है कि ईश्वर मनुष्य को उस पर बाध्य करता है बल्कि मनुष्य के हर इरादे और हर काम का ईश्वर को ज्ञान होता है और उसे यह भी पता होता है कि मनुष्य यह काम किस परिस्थिति में करेगा। अर्थात ईश्वर को केवल यही ज्ञान नहीं होता कि अमुख काम होने वाला है बल्कि उसे यह भी ज्ञान है कि कौन मनुष्य किन परिस्थितियों में कौन सा इरादा करेगा और क्या काम करेगा किंतु इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि मनुष्य अपने इरादे में स्वतंत्र नहीं है अर्थात ईश्वर का ज्ञान, मनुष्य की स्वतंत्रता नहीं छीनता। इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि मनुष्य में इरादे नाम की भावना होती है जो हर प्रकार से उसके अधिकार में होती है और बहुत से अन्य कारक उस पर प्रभाव डाल सकते हैं किंतु उसे अपरिहार्य नहीं बना सकते।

कुछ लोग मनुष्य को भाग्य व क़िस्मत के आगे विवश मानते हैं और उनका कहना है कि जो लिखा होता है वही होता है इस लिए मनुष्य के काम या उसके इरादे का कोई महत्व नहीं है।

## धर्म और भाग्य

मनुष्य का भाग्य या क़िस्मत उन विषयों में से है जिनका सही चित्र बहुत कम लोगों के मन में होगा। भाग्य के बारे में बहुत से प्रश्न उठते हैं। सब से पहले तो यह कि भाग्य है क्या? भाग्य के बारे में यदि आम लोगों से पूछा जाए कि वह क्या है तो वह यही कहेंगे कि भाग्य ईश्वर द्वारा निर्धारित होता है और जिसके भाग्य में जो लिखा होता है वही होता है और मनुष्य कुछ नहीं कर सकता यह वास्तव में उसी विचारधारा का क्रम है जिसमें कहा जाता है कि मनुष्य में स्वतंत्र इरादा नहीं होता।

वास्तव में यदि हम इसी अर्थ में भाग्य को मान लें तो फिर कर्म व प्रतिफल की पूरी व्यवस्था बाधित हो जाएगी। अर्थात यदि हर व्यक्ति के साथ वही होता है जो उसके भाग्य में है तो फिर उसका अपना अधिकार समाप्त हो जाएगा और वह कठपुतली की भांति हो जाएगा। उदाहरण स्वरूप यदि किसी व्यक्ति के घर में चोरी हो जाती है तो वह कहता है कि क्या करें भाग्य में यही लिखा था तो यदि चोर पकड़ा जाए और उसे चोरी पर दंड दिया जाने लगे तो वह यह कह सकता है कि इसमें मेरा क्या दोष है? इसके भाग में लिखा था कि इसके घर में चोरी हो और मेरे भाग्य में लिखा था कि मैं इसके घर में चोरी करूं तो मैंने तो वही किया जिसे ईश्वर ने हम दोनों के भाग्य में लिखा था तो इस पर मुझे दंड क्यों दिया जाए? या इसी प्रकार हम देखते हैं कि इस संसार में कोई धनी होता है और कोई निर्धन, किसी के पास इतना धन होता है कि वह अपने कपड़ों और जूते- चप्पल पर लाखों रूपये ख़र्च करता है और किसी के पास खाने के लिए दो समय की रोटी नहीं होती और वह कुछ हज़ार रूपये के लिए आत्म हत्या करने पर विवश हो जाता है।

तो क्या यहां यह कहा जा सकता है कि धनवान व्यक्ति के भाग्य में धन लिखा था इस लिए वह धनवान है और निर्धन के भाग्य में भूख से मरना लिखा था इस लिए वह निर्धन है? यदि हम यह मान लें तो फिर ईश्वरीय न्याय पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है? अर्थात सारे मनुष्य, ईश्वर की रचना हैं और ईश्वर सारे मनुष्यों से समान रूप से प्रेम करता है तो फिर उसने किस आधार पर किसी के भाग में धन व सुख व आंनद लिखा और कुछ लोगों के भाग्य में निर्धनता, दुख व पीड़ा? क्योंकि भाग्य जब लिखा जाता है तो मनुष्य हर प्रकार की बुराई और अच्छाई से दूर होता है अर्थात जो लोग भाग्य को इस अर्थ में स्वीकार करते हैं उनके अनुसार भाग्य, मनुष्य के जन्म के साथ ही लिख दिया जाता है तो फिर उस समय मनुष्य न अच्छाई किये होता है और न ही बुराई तो फिर ईश्वर क्यों किसी के भाग्य में सुख व किसी के भाग्य में दुख लिखता है? क्या यह न्याय है कि कुछ लोगों को बिना कुछ किये ही जीवन भर के लिए सुख दिया जाए और कुछ दूसरे लोगों को बिना कोई बुराई किये जीवन भर का दुख दे दिया जाए?

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि भाग्य इस अर्थ में कि सब कुछ पहले से निर्धारित और मनुष्य की क़िस्मत में लिखा होता है सही नहीं है किंतु इसके साथ

यह प्रश्न भी उठता है कि तो फिर क्या भाग्य का कोई अस्तित्व ही नहीं है? यदि यह मान लिया जाए तो भी यह सही नहीं लगता? अर्थात जैसाकि कुछ लोग कहते हैं कि भाग्य नाम की कोई चीज़ नहीं है और सब कुछ मनुष्य के हाथ में होता है हर इंसान अपनी तक़दीर का मालिक होता है तो यह बात भी पूरी तरह से सही नहीं है क्योंकि कई बार हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति कोई ऐसा काम करता है जिसे उससे पहले कई लोगों ने किया होता है और उससे उन्हें लाभ होता है किंतु वह जब वही काम उसी प्रकार से करता है तो उसे नुक़सान हो जाता है ऐसे समय पर लोग कहते हैं कि भाग्य में नहीं था। या फिर उदाहरण स्वरूप सैंक़डों लोग रेल की पटरी पार करते हैं किंतु एक व्यक्ति जब पार करता है तो उसी समय रेल आ जाती है और वह मर जाता है लोग कहते हैं उसका दुर्भाग्य था।

प्रश्न यह है कि यदि मनुष्य अपनी क़िस्मत का मालिक होता है तो कभी- कभी हर बात पर पूरी तरह से ध्यान देने के बावजूद उसे वह सब कुछ नहीं मिल पाता जो उससे पहले वही काम करने वालों को मिल चुका होता है? तो इसका अर्थ है कि भाग्य नाम की कोई वस्तु है जो नियमों और मनुष्य के कामों से ऊपर है और

जिसके कारण कभी- कभी मनुष्य को ऐसी स्थिति का सामना होता है जो विदित रूप से उसके कामों के परिणाम में नहीं होना चाहिए था।

हमारा भी यही कहना है कि यह सही नहीं है कि भाग को सिरे से नकार दिया जाए और यह कहा जाए कि सब कुछ मनुष्य के हाथ में होता है और वह जैसा चाहे उसका भविष्य वैसा ही होता है और वास्तव में यह विचार, धर्म को नकारने वालों और भौतिकवादी लोगों का है जो इस संसार को ही सब कुछ मानने हैं और भौतिकता से परे किसी भी वस्तु या विषय पर विश्वास नहीं रखते किंतु हम इस विचार धारा की पुष्टि किसी भी स्थिति में नहीं कर सकते बल्कि हम भी मानते हैं कि भाग्य नाम का विषय है किंतु हम उस भाग्य को नहीं मानते जो आलसी लोगों के लिए कुछ न करने का बहाना और बुरे लोगों के लिए सब कुछ करने का बहाना हो। भाग्य क्या है? और यदि है तो उसका सही रूप क्या है? और हमें किस प्रकार के भाग्य को मानना चाहिए? यह वह प्रश्न है जिसका उत्तर अगली चर्चा में दिया जायेगा।

## मनुष्य और उसके कर्म

सब से पहले तो हमें यह समझना होगा कि भाग्य क्या है? वास्तव में भाग्य किसी घटना के लिए ईश्वर द्वारा निर्धारित चरणों और उसके परिणाम को कहा जाता है। ईश्वर द्वारा निर्धारित भाग्य के कई प्रकार हैं किंतु यहां पर हम अत्यधिक जटिल चर्चा से बचते हुए केवल व्यवहारिक भाग्य के बारे में बात करेंगे जिसका प्रभाव स्पष्ट रूप से मनुष्य पर पड़ता और जिसका वह आभास करता है किंतु प्रश्न यह है कि व्यवहारिक भाग्य है क्या?

ईश्वर द्वारा भाग्य के निर्धारण का अर्थ यह है कि हम विभिन्न प्रक्रियाओं और घटनाओं को उसके सभी चरणों के साथ अर्थात आरंभ से अंत तक ईश्वर के तत्व ज्ञान व सूझबूझ के अंतर्गत समझें। अर्थात यह विश्वास रखें कि जो कुछ हो रहा है वह ईश्वर का इरादा है और ईश्वर ने चाहा है कि ऐसा हो इसलिए यह हो रहा है।

बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि जैसाकि हर वस्तु की उपस्थिति, ईश्वर की अनुमति और इच्छा पर निर्भर होती है और उसकी अनुमति के बिना किसी भी वस्तु का अस्तित्व संभव ही नहीं है उसी प्रकार हर वस्तु की उत्पत्ति को भी ईश्वर द्वारा निर्धारित भाग्य और सीमा व मात्रा से संबंधित समझना चाहिए क्योंकि ईश्वर की इच्छा के बिना कोई भी वस्तु अपने विशेष रूप व आकार तथा मात्रा तक नहीं पहुंच सकती और न ही अपने अंत तक पहुंच सकती है किंतु प्रश्न यह है कि यदि ऐसा है तो फिर कामों पर मनुष्य के अधिकार का क्या अर्थ है?

भाग्य निर्धारित होने की चर्चा इतनी ही जटिल है कि बहुत से विशेषज्ञ और बुद्धिजीवी इस चर्चा के कारण अपनी राह से भटक गये। वास्तव में इस विषय को समझना बहुत कठिन है कि हर प्रक्रिया ईश्वर से संबंधित है और उसके सभी चरणों का ईश्वर ने निर्धारित किया है जिसे भाग्य कहा जाता है किंतु इसके साथ

ही मनुष्य अपने कामों में स्वतंत्र भी है और उसका अपने कामों पर अधिकार भी है।

बहुत से लोग जो यह मानते थे कि भाग्य ईश्वर द्वारा निर्धारित होता है और हर काम व प्रक्रिया उससे संबंधित होती है, मनुष्य को अपने कामों में कठपुतली और विवश समझने लगे किंतु कुछ अन्य बुद्धिजीवी जिन्हें मनुष्य को विवश समझने से पाप व पुण्य तथा प्रतिफल की व्यवस्था की ख़राबी का ध्यान था, मनुष्य को पूर्ण रूप से स्वतंत्र और ईश्वरीय इरादे को मनुष्य के कामों से पूर्ण रूप से अलग समझने लगे किंतु हमारा यह कहना है कि मनुष्य के काम और अंजाम का निर्धारण एक सीमा तक ईश्वर द्वारा निर्धारित भाग्य से और किसी सीमा तक मनुष्य के अपने कामों द्वारा होता है किंतु इसके लिए हमें एक परिणाम के बहुकारक के नियम को समझना होगा। अर्थात यह मानना होगा कि कोई परिणाम या काम संभव है कई कारकों द्वारा इस प्रकार से हुआ हो कि हर कारक की अपनी भूमिका हो।

एक प्रक्रिया के कई कारक की कल्पना की कई दशाएं हो सकती हैं। जैसे कई कारक ऐसे हों जिनका प्रभाव एक साथ प्रक्रिया पर पड़ता है। जैसे बीज को पौधा बनाने के लिए उसे एक साथ ही बीज, पानी और तापमान की आवश्यकता हीती है और यह सारे कारक एक साथ उस पर अपना प्रभाव डालते हैं।

बहुकारक वाली प्रक्रिया की एक दशा यह है कि कई कारक एक के बाद एक अपना प्रभाव डालें जैसे एक के बाद एक इंजन चलाने से अंत में हवाई जहाज़ उड़ने लगता है।

बहुकारकों वाली प्रक्रिया के कई कारकों की एक दशा यह होती है कि कारक का प्रभाव अपने पहले वाले पर निर्भर हो जैसे क्रमबद्ध सड़क दुर्घटना या फिर मनुष्य का इरादा, फिर हाथ में क़लम उठा कर उसे चलाना तथा लिखना। तो यहां पर

सारे कारक एक दूसरे पर निर्भर हैं और जब सारे कारक अपना काम करेंगे तो ही लिखावट होगी।

कई कारकों की एक दशा यह भी है कि कारकों का अस्तित्व ही अपने पहले वाले कारक पर निर्भर हो। यह दशा, पहली वाली दशा से भिन्न है क्योंकि पहली वाली दशा में कारक का प्रभाव अपने पहले वाले कारक के प्रभाव पर निर्भर होता है स्वयं कारक का अस्तित्व नहीं। जैसे क़लम की लिखावट मनुष्य के हाथ हिलाने पर निर्भर है किंतु स्वंय क़लम नहीं।

इस प्रकार से यह स्पष्ट हो गया कि एक परिणाम के कई कारक संभव हैं। बल्कि यह कहें कि कुछ प्रक्रियाएं ऐसी हैं जिनके लिए कई कारकों का होना आवश्यक है। इस प्रकार से यह भी स्पष्ट हो गया कि मनुष्य जो काम करता है उसके दो कारक होते हैं एक तो मनुष्य का इरादा और दूसरे ईश्वर का इरादा किंतु मनुष्य के काम उन बहुकारक परिणामों में से हैं जिनके कारक तीसरी दशा से

संबंध रखते हैं अर्थात मनुष्य के काम वह परिणाम हैं जिनके कई कारकों में से हर कारक अपने- अपने वाले कारक पर निर्भर होता है और पहले वाले कारक के बिना दूसरे कारक का अस्तित्व ही संभव नहीं है।

अर्थात मनुष्य यदि कोई काम करता है तो उसका इरादा उसका कारक होता है और स्वंय मनुष्य अपने इरादे का कारक होता है और ईश्वर जिसने उसकी रचना की वह मनुष्य और उसके इरादे का कारक होता है। इस प्रकार से मनुष्य का हर काम कई कारकों का परिणाम होता है।

यदि कोई यह समझ ले कि एक परिणाम के कई कारक होते हैं फिर उसे भाग्य और उस पर मनुष्य और ईश्वर के प्रभाव की बात भी अच्छी तरह से समझ में आ जाएगी किंतु भाग्य के बारे में पूरी बात समझने के लिए आप हमारी अगली चर्चा अवश्य पढ़िये।

## मनुष्य का भाग्य एवं कर्म

मनुष्य जो कुछ करता है या जो कुछ उसके साथ होता है उसके दो कारक होते हैं एक स्वंय मनुष्य का इरादा और दूसरे ईश्वर का इरादा किंतु प्रश्न यह है कि यदि भाग्य है तो फिर कैसा है, अर्थात यदि मनुष्य और ईश्वर दोनों का इरादा प्रभावी है तो किस प्रकार से और भाग्य की रचना कैसे होती है?

इस प्रश्न के उत्तर में हम कहेंगे कि मनुष्य जो इरादा करता है और जो काम करता है उससे ऊपर के स्तर पर ईश्वर का इरादा होता है अर्थात मनुष्य का कोई भी काम ईश्वर के इरादे व ज्ञान से बाहर नहीं होता किंतु काम करने वाला स्वंय मनुष्य होता है। भाग्य में मनुष्य और ईश्वर दोनों का प्रभाव होता है इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण देते हैं जो किसी सीमा तक इस

विषय को स्पष्ट कर सकता है। उदाहरण स्वरूप कोई व्यक्ति जब हवाई यात्रा का इरादा करता है तो सब से पहले किसी एयर लाइन का चयन करता है उसके बाद वहां जाकर टिकट ख़रीदता है समय और फ्लाइट का चयन करता है और निर्धारित समय पर एयरपोर्ट पहुंच जाता है और फिर समय आने पर विमान में सवार हो जाता है और विमान उड़ान भर लेता है। इस पूरी प्रक्रिया में कोई भी नहीं कहेगा कि इसमें उस यात्री का इरादा नहीं था और वह विवश था वह पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता है किंतु उसके इरादे के ऊपर भी कुछ लोगों का इरादा होता है जो उसकी यात्रा के समय व अवधि को प्रभावित करता है जैसे एयर लाइन या एयर पोर्ट के अधिकारी चाहे तो उड़ान का समय बदल सकते हैं यहां पर यात्री विवश हो जाएगा या फिर उड़ान भरने के बाद यदि यात्री वापस जाना चाहे तो विमान वापस नहीं होगा और वह विवश होगा किंतु यदि विमान चालक, एयर लाइन या कंट्रोल टावर या सुरक्षा अधिकारी चाहें तो विमान वापस भी हो सकता है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि एक व्यक्ति की यात्रा में किसी सीमा तक और कुछ मामलों में यात्री स्वतंत्र होता है किंतु कुछ विषयों में वह विवश होता है।

अब आते हैं भाग्य की ओर भाग्य का मामला भी कुछ इसी प्रकार है। ईश्वर ने इस संसार के लिए कुछ भौतिक और आध्यात्मिक नियम बनाएं हैं और कुछ ऐसे विषय हैं जो एक दूसरे से संबंधित और एक दूसरे पर निर्भर हैं। अब उदाहरण स्वरूप इस भौतिक संसार का यह नियम है कि यदि कोई व्यक्ति सैंक़डों मीटर ऊंची इमारत से गिरेगा तो उसके शरीर को जो नुक़सान पहुंचेगा उससे उसकी मृत्यु हो जाएगी यह ईश्वर द्वारा बनाए गये शरीर की विशेषता है अब यदि कोई सैंकड़ों मीटर ऊंची इमारत से छलांग लगा देता है तो ईश्वर के भौतिक नियमों के अंतर्गत और ईश्वर द्वारा बनाए गये शरीर की विशेषताओं के कारण उसे मर जाना होगा। यह नियम है और छलांग लगाने के बाद न तो वह व्यक्ति वापस लौट सकता है और न ही नियम के अनुसार वह जीवित रह सकता है। अर्थात छलांग लगाने के बाद वह नीचे गिरने और मरने पर विवश है किंतु यह विवशता मनुष्य के लिए है और छलांग लगाने के बाद मनुष्य के इरादे की सीमा समाप्त हो जाती है किंतु ईश्वर का इरादा रहता है और यदि ईश्वर चाहे तो मनुष्य के विवश होने के बावजूद अपने इरादे से उसे नीचे गिरने से रोक सकता है और उसे जीवित रख सकता है। ठीक उसी प्रकार जैसे विमान यात्री विवश होता है किंतु दूसरे कुछ लोग विमान को वापस लौटाने में विवश नहीं होते।

ईश्वर ने इस संसार के लिए कुछ नियम बनाए हैं उनमें से कुछ भौतिक हैं और कुछ आध्यात्मिक। कुछ काम ऐसे होते हैं जो मनुष्य के जीवन के आगामी चरणों को निर्धारित करते हैं उदाहरण स्वरूप पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैही व आलेही व सल्लम तथा अन्य ईश्वरीय मार्गदर्शकों के कथनों के अनुसार जो अपने माता- पिता के साथ दुर्व्यवहार करता है उसकी संतान भी उसके साथ वैसा ही करती है और उसकी रोज़ी और आजीविका कम हो जाती है। उदाहरण स्वरूप किसी व्यक्ति ने यदि अपने माता- पिता के साथ दुर्व्यवहार किया हो और उसके माता- पिता मर गये हों और उनकी मृत्यु के दसियों वर्ष पश्चात अनथक परिश्रम के के बाद भी उस व्यक्ति के व्यापार या आय में उस प्रकार वृद्धि न हो जो वही व्यापार या काम करने वाले अन्य लोगों की आय में होती है तो विदित रूप से लोग यही कहेंगे कि यह उसका दुर्भाग्य है और उसके भाग्य में अधिक लाभ नहीं लिखा था किंतु यदि हम उसका अतीत देखें तो हमें नज़र आएगा कि यह भाग्य उसने स्वंय लिखा है अर्थात जब उसने अपने माता- पिता के साथ बुरा व्यवहार किया तो फिर उसके भाग्य में कम रोज़ी और अपनी संतान की ओर से दुःख उठाना ईश्वर ने लिख दिया अब वह चाहे जितना परिश्रम करे या अपनी संतान के साथ चाहे जितनी भलाई करे उसे अपने किये का दंड अवश्य मिलेगा। इस प्रकार से हम यह समझ सकते हैं मनुष्य के भाग्य में किस प्रकार से ईश्वर और मनुष्य

दोनों का इरादा होता है। अर्थात ईश्वर ने इस संसार के लिए जो व्यवस्था बनायी है उसमें मनुष्य के हर काम का एक प्रभाव और परिणाम है जो इस सांसारिक व्यवस्था का भाग है। यदि मनुष्य अपने इरादे से वह काम कर लेता है तो फिर आगे चल कर अपने जीवन में अपने अतीत के उस काम का प्रभाव उसे अवश्य मिलेगा। अच्छे काम का अच्छा और बुरे काम का बुरा प्रभाव। इस प्रकार से हम समझ सकते हैं कि किसी सीमा तक उन लोगों की बात भी सही है जो यह कहते हैं मनुष्य अपना भाग्य अपने हाथ से लिखता है।

अलबत्ता यहां पर एक बात यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि धार्मिक और इस्लामी दृष्टि से हर दुख और समस्या, अतीत में की गयी किसी बुराई या हर सुख और समृद्धि अतीत में की गयी अच्छाई का ही परिणाम नहीं होती। अर्थात यह सही नहीं है कि हम यदि आज किसी को समस्याओं में घिरा हुआ पाएं तो तत्काल यह निर्णय कर लें कि अवश्य उसने अतीत में कोई बुराई की होगी इस लिए ईश्वर ने उसके भाग्य में समस्याएं और दुःख लिख दिए हैं। या किसी को समृद्ध देखें तो कहें कि अवश्य उसने कोई बहुत भला काम किया होगा इस लिए ईश्वर ने उसके भाग्य में सुख लिख दिया है।

कभी- कभी यह भी होता है कि ईश्वर अपने उपर लोगों के विश्वास और उनकी धर्मपरायणता की परीक्षा के लिए दुःख देता है और देखता है कि यह लोग दुःख में क्या करते और फिर दुख और समस्याओं में उसके व्यवहार के आधार पर उन्हें संसार या परलोक में दंड या प्रतिफल मिलता है। इसी प्रकार ईश्वर कभी- कभी लोगों को सुख व समद्धि देकर आज़माता है कि इस दशा में उनका व्यवहार क्या होता है और फिर उसी आधार पर उन्हें लोक व परलोक में प्रतिफल मिलता है।

इसके साथ यह बात भी उल्लेखनीय है कि ईश्वर के निकट यह संसार कुछ दिनों तक रहने वाला है और मनुष्य का जीवन अत्यन्त सीमित होता है इस लिए ईश्वर जिन लोगों से प्रेम करता है उनकी भलाईयों का प्रतिफल परलोक के लिए सुरक्षित रखता है क्योंकि परलोक का प्रतिफल सदा रहेगा जबकि संसार में मिलने वाला इनाम कुछ दिनों तक होगा ।

इसी प्रकार ईश्वर जिन भले लोगों से प्रेम करता है उनकी छोटी- मोटी बुराईयों का दंड यहीं इसी संसार में दे देता है ताकि वे परलोक के दंड से सुरक्षित रहें क्योंकि संसार का दंड कुछ दिनों तक रहेगा जब कि परलोक का दंड सदैव रहेगा।

ईश्वर जिन लोगों को उनकी बुराईयों के कारण पसन्द नहीं करता वह लोग यदि कोई अच्छाई करते हैं तो चूंकि ईश्वर ने वचन दिया है कि वह हर अच्छाई और बुराई का बदला देगा इस लिए बुरे लोगों की अच्छाइयों का इनाम इसी ससांर में सुख- समृद्धि के रूप में दे देता है।

## ईश्वर और न्याय

ईश्वर का न्याय भी उन विषयों में से है जिन के बारे में बुद्धिजीवियों और विशेषज्ञों में मतभेद पाया जाता है और इस संदर्भ में उन्होंने भिन्न- भिन्न विचार प्रस्तुत किये हैं।

ईश्वर के न्याय के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के विचार वास्तव में इस विषय के महत्व के कारण हैं और यदि ध्यान दिया जाए तो पूरा धर्म- कर्म ईश्वर की इसी विशेषता पर टिका हुआ है।

ईश्वर के न्याय के संदर्भ में पहला प्रश्न तो यह उठता है कि ईश्वर न्यायी है या नहीं। तो इस प्रश्न का बहुत सीधा सा उत्तर है कि यह संभव हीं नहीं है कि वह न्यायी न हो क्योंकि यदि वह न्यायी नहीं होगा तो अच्छे कर्म करने वाले को

नरक में और बुरे कर्म करने वाले को स्वर्ग में डाल सकता है और लोगों के कर्मों के प्रतिफल में उलट-फेर और अनियमिता कर सकता है और यदि कर्म करने वाला ऐसा समझने लगे तो फिर वह कोई कर्म कर ही नहीं सकता क्योंकि उसे प्रतिफल पर विश्वास नहीं होगा। इस लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य को ईश्वर के न्यायी होने पर पूर्ण रूप से विश्वास हो।

यही कारण है कि हम ने जिन बुद्धिजीवियों के बारे में कहा कि ईश्वर के न्याय के बारे में उन में मतभेद है तो यहां पर हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि समस्त इस्लामी मतों में ईश्वर को न्यायी माना जाता है अर्थात यह कोई नहीं कहता कि ईश्वर अत्याचारी है क्योंकि कुरआन मजीद की असंख्य आयतों में ईश्वर को न्यायप्रेमी और अत्याचार से दूर कहा गया है।

तो प्रश्न यह उठता है कि यदि सब लोग ईश्वर को न्यायप्रेमी मानते हैं और कोई भी उसे अत्याचारी नहीं समझता तो फिर उनमें मतभेद कैसा है और किस

विषय ने उन्हें अलग- अलग मत अपनाने पर विवश किया। वास्तव में ईश्वर के न्याय पर चर्चा करने वाले इस बात में मतभेद रखते हैं कि क्या मानव बुद्धि में इतनी शक्ति है कि वह धार्मिक आदेशों के बिना ही भलाई व बुराई समझ सकती है? या फिर बुद्धि को कामों और चीज़ों की भलाई- बुराई समझने के लिए धार्मिक व ईश्वरीय आदेशों की आवश्यकता होती है? दूसरे शब्दों में क्या बुद्धि में इतनी शक्ति है कि वह यह निष्कर्ष निकाले कि यदि किसी मनुष्य ने अच्छा काम किया है और ईश्वर के समस्त आदेशों का पालन किया है तो ईश्वर के लिए आवश्यक है कि वह उसे स्वर्ग में भेजे?

क्या बुद्धि अकेले ही यह निष्कर्ष निकाल सकती है कि जिन लोगों ने जीवन भर बुराईयां की हों ईश्वर के लिए आवश्यक है कि उन्हें नरक में भेजे? या फिर बुद्धि को इस प्रकार के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए धार्मिक नियमों और ईश्वरीय आदेशों की भी आवश्यकता होती है? या यह कि इस प्रकार के धर्म से संबंधी नियमों पर आधारित निष्कर्ष केवल ईश्वरीय संदेशों और धार्मिक शिक्षाओं के आधार पर ही निकाले जा सकते हैं और बुद्धि से इसका कोई संबंध नहीं होता?

बात को अधिक स्पष्ट करते हुए कहेंगे कि कुछ बुद्धिजीवियों का कहना है कि व्यवहारिक रूप से जो कुछ ईश्वर करता है वह भलाई है और धार्मिक मामलों में जो कुछ ईश्वर आदेश देता वह अच्छा है ऐसा नहीं है कि चूंकि अमुक काम अच्छा है इसलिए ईश्वर उसका आदेश देता है बल्कि सही बात यह है कि चूंकि अमुक काम का ईश्वर ने आदेश दिया है इस लिए वह अच्छा है।

अर्थात कुछ बुद्धिजीवियों का कहना है कि उदाहरण स्वरूप झूठ बोलना मूल रूप से न अच्छा है न बुरा अर्थात बुद्धि के लिए अच्छाई व बुराई से खाली विषय है अब चूंकि ईश्वर ने झूठ को बुरा कहा है कि इस लिए झूठ बुरा है जबकि इसके मुक़ाबले में कुछ बुद्धिजीवियों के एक वर्ग का यह कहना है कि बुद्धि स्वंय भी भला- बुरा समझने की शक्ति रखती है और वह अपनी इसी शक्ति और क्षमता की सहायता से कुछ बुराईयों को बुरा और ईश्वर को उनसे दूर और कुछ अच्छाइयों को अच्छा और ईश्वर के लिए आवश्यक मानते हैं अर्थात उनका यह कहना है कि धार्मिक नियमों के बिना भी कुछ कामों की भलाई और बुराई समझने की शक्ति

बुद्धि में होती है अर्थात उदाहरण स्वरूप उनका का कहना है कि झूठ के बारे में यदि किसी को धार्मिक नियमों का ज्ञान न भी हो तब भी वह अपनी बुद्धि के आधार पर उसे बुरा काम समझेगा।

इस प्रकार के बुद्धिजीवियों का कहना है कि बुरा काम बुरा होता है इस लिए ईश्वर उससे दूर रहने का आदेश देता है। यह सही नहीं है कि चूंकि ईश्वर ने किसी काम से दूर रहने को कहा है इस लिए वह बुरा है। अर्थात झूठ बुरा है इस लिए ईश्वर ने उस से दूर रहने को कहा है। यह सही नहीं है कि चूंकि ईश्वर ने झूठ से दूर रहने को कहा है इस लिए झूठ बोलना बुरा काम है। इस संदर्भ में चर्चा अत्यधिक व्यापक है और दोनों प्रकार के विचार पेश करने वालों के अपने- अपने तर्क हैं।

## न्याय और उसका अर्थ

न्याय को अरबी भाषा में अद्ल कहा जाता है उस का अर्थ होता है समान बनाना और आम- बोलचाल में इस का अर्थ होता है दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखना और इसके विपरीत अत्याचार होता है। इस प्रकार न्याय की परिभाषा यह हैः हर वस्तु या व्यक्ति को उसका अधिकार देना किंतु इस परिभाषा को सही रूप से समझने के लिए सबसे पहले किसी ऐसे प्राणी की कल्पना करनी होगी जिसके कुछ अधिकार हों ताकि उसके अधिकारों की रक्षा को न्याय और उसके अधिकारों के हनन को अन्याय व अत्याचार कहा जाए किंतु यह तो प्राणियों की बात है किंतु कभी- कभी न्याय के अर्थ को अधिक विस्तृत कर दिया जाता है इस प्रकार से न्याय का व्यापक अर्थ इस प्रकार होगाः प्रत्येक वस्तु को उसके सही स्थान पर रखना।

इस परिभाषा के अनुसार न्याय बुद्धिमत्ता व दूरदर्शिता के समान होगा किंतु इसके साथ यह भी प्रश्न है कि हर अधिकारी का अधिकार और हर वस्तु का

स्थान किस प्रकार से स्पष्ट होगा तो यह एक विस्तृत चर्चा है जिसका यहां स्थान नहीं, यहां पर हम इस चर्चा का संक्षेप में वर्णन करते हैं। आपको याद होगा कि पिछली चर्चा में हमारी बहस यह थी कि अच्छा काम स्वंय अच्छा होता है या इसलिए अच्छा होता है कि महान ईश्वर ने उसका आदेश दिया है और बुरा काम क्या स्वयं बुरा होता है या इसलिए बुरा होता कि ईश्वर ने उससे दूर रहने को कहा है आज यहां पर हम ईश्वर के न्याय के संबंध में अपनी चर्चा में इसी विषय को आगे बढ़ा रहे हैं। इस पूरी चर्चा में जिस विषय की ओर ध्यान देना आवश्यक है वह यह है कि हर बुद्धिमान व्यक्ति यह समझता है कि यदि कोई अकारण किसी अनाथ के हाथ से उदाहरण स्वरूप रोटी छीन ले या किसी निर्दोश व्यक्ति की हत्या कर दे तो उसने अत्याचार किया है और बुरा काम किया है और उसकी यह समझ और यह निष्कर्ष ईश्वर के आदेश पर निर्भर नहीं होता। अर्थात बुद्धि रखने वाला व्यक्ति इस काम को बुरा इसलिए नहीं समझता कि ईश्वर ने इस काम को बुरा कहा है क्योंकि हम देखते हैं कि ईश्वर के अस्तित्व का इन्कार करने वाले और धर्म व परलोक पर विश्वास न करने वाले भी इन कामों को बुरा समझते हैं। तो यदि हम यह मान लें कि बुरे काम की बुराई और अच्छे काम की अच्छाई ईश्वर के आदेश पर निर्भर होती है तो जो लोग धर्म और ईश्वर में विश्वास ही नहीं रखते फिर भी अत्याचार को बुरा और न्याय को अच्छा समझते हैं उनके बारे में क्या कहेंगे?

इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि बुरा काम केवल इसीलिए बुरा नहीं होता कि ईश्वर ने उसे बुरा कहा है बल्कि कुछ मनुष्य की बुद्धि में भी यह शक्ति होती है कि वह भलाई व बुराई को बिना ईश्वर व धर्म के आदेश को जाने, समझे और उससे दूर रहे या उसके निकट जाए। अलबत्ता यह एक अलग चर्चा है कि वह कौन सी शक्ति है और किस प्रकार की योग्यता है जिसके बल पर मनुष्य भलाई को भला और बुराई को बुरा समझने में सक्षम होता है।

ईश्वर के न्याय के बारे में चर्चा के लिए बस इतना जान लेना पर्याप्त है कि हर वस्तु में स्वंय ही भलाई या बुराई का पहलु होता है और ईश्वर बुराई से बचने और भलाई करने का आदेश देता है। अब तक की चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि न्याय के लिए दो अर्थ दृष्टिगत रखे जा सकते हैं एक दूसरों के अधिकारों का सम्मान और दूसरे सूझबूझ के साथ कोई काम करना जिसमें दूसरों के अधिकारों का सम्मान भी शामिल है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि न्याय का अर्थ

समानता व बराबरी कदापि नहीं है बल्कि न्याय हर एक को उसका स्थान व अधिकार देना है। उदाहरण स्वरूप शिक्षक यदि अपने सारे छात्रों को चाहे वह पढ़ने वाले हों या पढ़ाई से मन चुराने वाले हों, चाहे परिश्रमी हों या आलसी हों समान रूप से प्रोत्साहित अथवा दंडित करे तो हमने न्याय के जो अर्थ बताए हैं उसके अनुसार वह शिक्षक न्यायी नहीं होगा। या उदाहरण स्वरूप यदि किसी संपत्ति के बारे में दो पक्षों में विवाद हो जाए और न्यायधीश दोनों पक्षों को समान रूप से वह संपत्ति बांट दे तो यह न्याय नहीं होगा ।

शिक्षक का न्याय यह है कि वह प्रत्येक छात्र को उसकी योग्यता और परिश्रम के अनुरूप दंड या प्रोत्साहन दे। न्यायधीश का न्याय यह है कि वह संपत्ति उसे दे जिसकी वास्तव में वह हो। इस प्रकार से यह स्पष्ट हो गया कि समानता हर स्थान पर न्याय नहीं हो सकती बल्कि कहीं -कहीं अत्याचार व अन्याय हो जाती है। इसी प्रकार से ईश्वर के न्यायी होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह अपनी सभी रचनाओं को समान रूप से बनाए या उन्हें समान रूप से सुविधांए दे। उदाहरण स्वरूप मनुष्य को पंख व सींग आदि भी दे और पशुओं को बुद्धि व कथन की शक्ति प्रदान करे।

ईश्वर के न्याय व तत्वदर्शिता का अर्थ यह है कि वह संसार को ऐसा बनाए जिससे उसमें रहने वालों को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके और संसार की विभिन्न वस्तुएं और प्राणी इस प्रकार से बनाए गये हों कि एक दूसरे के अंश व एक दूसरे की आवश्यकताओं के पूरक के रूप में अपने अंतिम लक्ष्य के अनुरूप भी हों। इसी प्रकार ईश्वर के न्याय व तत्वज्ञान का अर्थ यह नहीं है कि हर मनुष्य को समान बनाए बल्कि न्याय यह है कि हर मनुष्य को उसकी योग्यता और क्षमता के अनुरूप कर्तव्य दिया जाए और फिर उस कर्तव्य के पालन में उसकी स्वेच्छिक गतिविधियों और कामों को दृष्टि में रखते हुए उसे दंड या प्रतिफल दिया जाए। तो यदि हम यह देखते हैं कि मनुष्य असमान दशा में है तो इसका अर्थात यह नहीं है कि ईश्वर ने मनुष्य के साथ न्याय नहीं किया बल्कि यदि सारे मनुष्य समान दशा में होते तो यह अन्याय होता क्योंकि हम ने बताया कि न्याय का अर्थ हर अधिकारी को उसका अधिकार देना और हर वस्तु को उसके स्थान पर रखना है।

यह कोई बहुत गूढ़ विषय नहीं है। हम अपने जीवन में हर क़दम पर इस अर्थ को साक्षात देखते हैं। किसी भी कंपनी या संस्था में सभी कर्मचारियों को समान अधिकार और समान सुविधाएं प्राप्त नहीं होती। बल्कि हर एक को उसकी शिक्षा, अनुभव, रिकार्ड, काम और पद के अनुसार वेतन और सुविधाएं प्राप्त होती हैं। इस प्रकार के स्थानों पर यदि समान अधिकार व सुविधाएं प्रदान की जाए तो यह न्याय नहीं बल्कि अन्याय होगा। हमारी अगली चर्चा महान व सर्वसमर्थ ईश्वर के न्याय के प्रमाणों के बारे में होगी।

## महान ईश्वर और तत्वज्ञान

जैसा कि हमने अपनी पिछली चर्चाओं में कहा कि एक व्याख्या के अनुसार ईश्वरीय न्याय ईश्वरीय तत्वदर्शिता का एक भाग है और दूसरी व्याख्या के अनुसार न्याय ही तत्वदर्शिता है।

ईश्वर की तत्वदर्शिता या तत्वज्ञान का अर्थ है कि ईश्वर हर काम वैसा ही करता है जैसाकि उसे होना चाहिए अर्थात उसका हर काम लक्ष्यपूर्ण व उद्देश्यपूर्ण होता है भले ही विदित रूप से हमारी बुद्धि उसे समझ न सके। अब यदि न्याय का अर्थ ईश्वर के तत्वज्ञान को ही समझा जाए तो फिर ईश्वर के न्याय को प्रमाणित करने का वही मार्ग होगा जो उसके तत्वज्ञान को प्रमाणित करने के लिए है।

इस कार्यक्रम की आरंभिक चर्चाओं में हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि ईश्वर का हर काम सूझबूझ और दूरदर्शिता के साथ होता है किंतु यहां पर यदि हम न्याय का अर्थ तत्वज्ञान व तत्वदर्शिता कहते हैं तो इस संदर्भ में ईश्वर के तत्वज्ञान पर हम अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे।

यह तो हम जान चुके हैं कि ईश्वर के पास परम शक्ति और अधिकार है और जो काम भी वह चाहे कर सकता है और जो काम न चाहे उस उस काम को करने

पर कोई विवश नहीं कर सकता, न उसे कोई प्रभावित कर सकता है और न ही किसी भी साधन द्वारा उस पर दबाव डाल सकता है। इस प्रकार से यह स्पष्ट हुआ कि ईश्वर जो चाहे कर सकता है और हर काम करने पर वह पूर्ण सक्षम है किंतु इस विश्वास का यह अर्थ नहीं है कि वह हर वह काम करता भी है जिसकी उसमें क्षमता है बल्कि वह केवल वही काम करता है जिसे वह करना चाहता है।

पिछली चर्चाओं में हम यह भी जान चुके हैं कि ईश्वर का इरादा अर्थपूर्ण व लक्ष्यपूर्ण होता है और उसका कोई भी काम उद्देश्य रहित नहीं होता। ईश्वर वही काम करता है जो उसके तत्वज्ञान व तत्व दर्शिता व गुणों के अनुकूल होता है और यदि उसके विशेष गुण किसी काम को अनावश्यक बनाते हों तो वह किसी भी दशा में वह काम नहीं करता और चूंकि ईश्वर सम्मपूर्ण परिपूर्णता है इसलिए उसका इरादा भी सदैव ही उसकी रचनाओं के हित में होता है और यदि किसी वस्तु अथवा प्राणी के अस्तित्व के लिए किसी दुष्टता व अभाव का अस्तित्व आवश्यक होगा तो वह बुराई और दुष्टता, ईश्वर के इरादे का मूल लक्ष्य नहीं बल्कि हित पहुंचाने की प्रक्रिया के अंश के रूप में होगा। अर्थात ईश्वर की इच्छा व इरादा कभी किसी दुष्टता व बुराई से संबंधित नहीं हो सकता है यदि कभी कोई दुष्टता या

बुराई उसने पैदा की है तो किसी भलाई को पूरा करने के लिए ऐसा किया है तो इस दशा में वह दुष्टता वास्तव में हित पहुंचाने की प्रक्रिया का भाग और भलाई होगी। क्योंकि लक्ष्य व उद्देश्य, साधनों की परिभाषा व महत्व को बदल देते हैं। उदाहरण स्वरूप किसी मनुष्य का सीना चीर कर उसका हृदय बाहर निकालना बहुत बड़ी बुराई और एक जघन्य अपराध है और विश्व के सभी क़ानूनों में इसे एक बड़ा अपराध माना जाता है किंतु जब यही काम एक डाक्टर आपरेशन थियटर में मनुष्य को हृदय रोग से छुटकारा दिलाने के लिए करता है तो न केवल यह कि यह काम अपराध नहीं होता बल्कि मानवसमाज की बड़ी सेवा भी समझा जाता है। ऐसा क्यों है? ऐसा इस लिए है क्योंकि सीना चीरना और हदय निकालना भले एक बुरा काम हो किंतु जब डाक्टर द्वारा यह काम होता है तो यह बुराई नहीं रोगी को रोग से मुक्त करने की भलाई का एक भाग और एक चरण होता है।

ईश्वर का इरादा भी यही है अर्थात ईश्वर किसी का बुरा नहीं चाहता और न ही किसी के साथ बुरा करता है और यदि किसी के साथ बुरा होता है तो या तो वह उसके अपने कर्मों का फल होगा या फिर उसके हित में की जाने वाली किसी भलाई की प्रक्रिया का भाग होगा।

इस प्रकार से यदि संसार को देखा जाए तो ईश्वर के गुण ऐसे हैं जिनके दृष्टिगत यह आवश्यक था कि संसार को ऐसा बनाया जाए कि सामूहिक रूप से उसकी व्यवस्था व रचना से सब को अधिक से अधिक लाभ पहुंचे यद्यपि आंशिक रूप से कुछ रचनाओं को विदित रूप से हानि भी पहुंचती दिखायी दे।

## ईश्वर और उसके दूत

वास्तव में ईश्वरीय दूत ही मनुष्य द्वारा ईश्वर की पहचान में मुख्य सहायक होते हैं इस लिए ईश्वरीय दूतों की पहचान वास्तव में ईश्वर की पहचान का एक भाग है। इस से पहले इस श्रंखला के आरंभ में हम विस्तार से इस बात पर चर्चा कर चुके हैं कि बुद्धि रखने वाले मनुष्य के सामने अपने लोक- परलोक सृष्टि और इसी प्रकार के ढ़ेर सारे विषयों के बारे में बहुत से प्रश्न आते हैं किंतु उनमें से

कुछ प्रश्नों का उत्तर पाना हर बुद्धिमान मनुष्य के लिए आवश्यक होता है और यदि कोई स्वस्थ बुद्धि रखता होगा तो उसके मन में कुछ प्रश्न अवश्य उठेंगे और जब तक उसे उन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलेगा तब तक उसके मन को शांति भी नहीं प्राप्त होगी।

**इस प्रकार के प्रश्नों में से कुछ प्रश्न यह हो सकते हैं**

संसार और मनुष्य के अस्तित्व का मूल स्रोत किया है? और उनका संचालन व निर्देशन किस के हाथ में है? यदि वास्तविक सफलता व कल्याण तक पहुंचने के लिए जीवन के सही मार्ग की पहचान आवश्यक है तो सही मार्ग की पहचान कैसे होगी? क्या इसके लिए कोई विश्वस्त साधन है? उस मार्ग तक पंहुचाने वाला कोई भरोसेमंद सहारा है? यदि है तो किस के पास है? इन प्रश्नों का उत्तर धर्म के तीन मूल सिद्धान्तों में निहित है और वह तीन मूल सिद्धान्त एकेश्वरवाद, प्रलय और ईश्वरीय दूतों के आगमन पर विश्वास है। इस श्रंखला के आरंभ में यदि आप को

याद हो तो हमने ईश्वर की पहचान पर चर्चा की और चर्चा के दौरान हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि हर वस्तु का मूल स्रोत इस संसार का रचयिता और पालनहार है और सब कुछ उसके नियंत्रण व तत्वज्ञान के अंतर्गत चल रहा है और इस सृष्टि की कोई भी वस्तु किसी भी स्थान में किसी भी स्थिति में किसी भी तरह से ईश्वर से आवश्यकतामुक्त नहीं हो सकती।

हमने अब तक की चर्चा में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस संसार का कोई रचयिता है इसके साथ ही उस रचयिता की कुछ विशेषताओं का भी वर्णन किया और इसके लिए केवल बौद्धिक तर्कों का ही सहारा लिया गया किंतु जब बौद्धिक तर्कों से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध हो गया है अर्थात यदि हमने मान लिया है कि इस संसार का स्वामी एक अनन्त शक्ति स्रोत व आवश्यकता मुक्त अस्तित्व है और उसका अस्तित्व ऐसा है जिसके आयामों को पूरी तरह से समझना असंभव है किंतु उसके चिन्हों और लक्षणों से उसकी विशेषताओं के कुछ भागों को समझा जा सकता है तो अब इस चरण की वार्ता में हम कुछ बातें उसके हवाले से कर सकते हैं अर्थात बौद्धिक तर्कों के साथ ही साथ ईश्वर के कुछ आदेशों का भी हवाला दे सकते हैं।

अब हम जो चर्चा आरंभ करने जा रहे हैं उसका उद्देश्य इस बात को सिद्ध करना है कि सृष्टि की वास्तविकता और जीवन के सही मार्ग की पहचान के लिए बोध व बुद्धि के अतिरिक्त भी कुछ अन्य साधन मौजूद हैं जो इतने विश्वस्नीय हैं कि उनसे गलती करने की संभावना नहीं है। यहां पर यह भी बताते चलें कि आज के कार्यक्रम में हम जो भी चर्चा करेंगे वह वास्तव में भूमिका होगी इस लिए ध्यान से पढ़ें क्योंकि हो सकता है कि हमारी बात टुकड़े- टुकड़े में लगे किंतु अगली चर्चाओं में इन विषयों का ज्ञान आवश्यक है जिनका हम अपनी आज की चर्चा में वर्णन कर रहे हैं।

वह साधन जो जिसमें गलती की कोई संभावना नहीं है ईश्वरीय संदेश है। ईश्वरीय संदेश अर्थात एक प्रकार से ईश्वरीय शिक्षा है जो ईश्वर के कुछ चुने हुए दासों से विशेष होती है और साधारण लोगों को उसकी वास्तविकता का ज्ञान नहीं होता क्योंकि इस प्रकार की ईश्वरीय शिक्षाओं का कोई चिन्ह उनके भीतर नहीं

होता अलबत्ता साधारण लोग भी इस बात पर सक्षम होते हैं कि जब कोई यह दावा करे कि उसके पास ईश्वरीय संदेश आते हैं तो आवश्यक चिन्हों और लक्षणों से इस बात की पुष्टि कर सकते हैं कि ईश्वरीय संदेश का पात्र होने का दावा करने वाला सच बोल रहा है या नहीं।

स्वाभाविक रूप से यदि साधारण लोगों के लिए यह सिद्ध हो जाए कि किसी के पास ईश्वरीय संदेश आते हैं और वह संदेश दूसरों तक भी पहुंचे तो फिर उस संदेश को स्वीकार करना आवश्यक होगा और उसका विरोध करना किसी के लिए सही नहीं होगा। इस प्रकार इस चर्चा के मूल विषय इस से प्रकार होंगेः ईश्वरीय दूतों के धरती पर आने की आवश्यकता क्यों है? ईश्वर से संदेश प्राप्त करने के बाद और लोगों तक उसे पहुंचाने से पूर्व ईश्वरीय संदेशों में फेर बदल नहीं हो सकती, अर्थात ईश्वरीय दूत ग़लती या भूल से सुरक्षित होता है और इसी प्रकार इस बात पर भी चर्चा करेंगे कि यह कैसे सिद्ध होगा कि कौन ईश्वरीय दूत है और कौन झूठ बोल रहा है।

जब हम इस बात पर चर्चा कर लेंगे कि ईश्वर के संदेशों को आम लोगों तक पहुंचाने के लिए ईश्वरीय दूतों की आवश्यकता है तो फिर इस बात पर चर्चा करेंगें कि ईश्वरीय दूत इतिहास में कौन लोग रहे हैं और अंतिम दूत है? और अंतिम दूत के बाद लोगों के मार्गदर्शन का दायित्व किस पर है? इन सब बातों को लेकर हमारी चर्चा आरंभ हो चुकी है किंतु आज की चर्चा अगली चर्चाओं की भूमिका थी।

## ईश्वरीय दूत और अनुसरण

कुछ लोग यह शंका करते हैं कि यदि ईश्वर ने अपने दूतों को लोगों के मार्गदर्शन के लिए भेजा और उसके दूतों ने यह काम पूरी ज़िम्मेदारी से किया तो फिर विश्व में इतने अधिक लोग पाप क्यों करते हैं? और क्यों इतने व्यापक स्तर पर भ्रष्टाचार दिखाई देता है? क्या यह संभव नहीं था कि ईश्वर कोई ऐसी

व्यवस्था करता जिससे लोग पाप ही न करते और पूरे विश्व में केवल भलाई और भले लोग ही रहते? या कम से कम ईश्वरीय दूतों का अनुसरण करने वाले ही एकजुट रहते किंतु हम देखते हैं कि ऐसा नहीं है और विभिन्न कालों में ईश्वरीय दूतों के अनुयाई भी एक दूसरे से लड़ते दिखाई देते हैं।

इस शंका का उत्तर देने से पूर्व हम उस चर्चा की याद दिलाना चाहेंगे जिसमें हम ने मनुष्य में चयन अधिकार की बात की थी और आपको याद होगा कि हमने कहा था कि ईश्वर ने संसार से सभी मनुष्यों को चयन शक्ति दी है। अर्थात हर मनुष्य को यह अधिकार दिया है कि वह सही या ग़लत मार्ग में से किसी एक मार्ग का चयन करे और यह अधिकार ईश्वरीय न्याय के अनुकूल है क्योंकि यदि ईश्वर लोगों को विवश करता तो फिर भले को भलाई का इनाम और बुरे को बुराई का दंड देना अर्थहीन हो जाता क्योंकि बुरा व्यक्ति कह सकता है कि यदि मैंने बुराई की है तो इसमें मेरा क्या दोष? ईश्वर ने मुझे बुराई करने पर विवश किया था। इसी प्रकार वह भले व्यक्ति को मिलने वाले इनाम पर भी आपत्ति कर सकता था कि यदि किसी ने कोई अच्छा काम किया है तो उसमें उसका क्या कारनामा है? ईश्वर ने चाहा कि वह अच्छाई करे इस लिए उसने अच्छाई की।

इसी प्रकार की आपत्तियों और आतार्किक परिस्थितियों के दृष्टिगत ईश्वर ने मनुष्य को यह अधिकार दिया है अर्थात उसे चयन का अधिकार दिया है अलबत्ता चयन में सरलता के लिए उसने मनुष्य के लिए बहुत से साधन भी उपलब्ध किये हैं।

ईश्वर ने जो साधन उपलब्ध किये उनमें सर्वप्रथम मनुष्य की अपनी बुद्धि है अर्थात मनुष्य को बुद्धि जैसा उपहार दिया है जिसकी सहायता से वह भले- बुरे की पहचान कर सकता है किंतु चूंकि बुद्धि पर कभी- कभी वातावरण और घर परिवार का वातावरण प्रभाव डालता है इस लिए ईश्वर ने अपने दूतों को भेजा ताकि यदि कुछ वास्तविकताओं को बुद्धि भूल गयी है तो ईश्वरीय दूत उसे याद दिलाएं किंतु ईश्वर ने जो यह व्यवस्था की है उसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सारे मनुष्य इन सुविधाओं और साधनों से सही रूप में लाभ उठायेंगे।

ईश्वर ने मनुष्य को परिपूर्णता की ओर ले जाने की जो व्यवस्था की थी और जिसके अतंर्गत उसने दूत भेजे और उन्होंने कल्याण व परिपूर्णता के साधनों से मनुष्य को अवगत कराया तो यदि सारे मनुष्य उन साधनों और ईश्वर की इस कृपा से लाभान्वित होते तो निश्चित रूप से स्वर्ग धरती पर उतर आता अर्थात यह पूरा संसार पवित्रता का उदाहरण होता और भ्रष्टाचार व पाप तथा बुराई का कहीं कोई चिन्ह नहीं होता किंतु हम देखते हैं कि बहुत से लोग न तो अपनी बुद्धि की सुनते हैं और न ही ईश्वरीय दूतों के संदेशों पर ध्यान देते हैं और इसीलिए बुराईयों में डूब जाते हैं अब यदि ईश्वर कोई ऐसी व्यवस्था करता जिससे पूरे संसार में कोई बुराई न कर पाता तो फिर मनुष्य से चयन का अधिकार छिन जाता जिसके बाद फिर स्वर्ग व नर्क की पूरी व्यवस्था अर्थहीन हो जाती। अर्थात यदि ईश्वर अपनी शक्ति से इस संसार से बुराई मिटा देता तो फिर चयन शक्ति के स्वामी मनुष्य को इस संसार में भेजने और उसकी परीक्षा लेकर उसे दंड या पुरस्कार देने की पूरी ईश्वरीय व्यवस्था ही चरमरा जाती।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य में अवज्ञा व पाप में रूचि का मुख्य कारण वास्तव में उसके भीतर चयन शक्ति की उपस्थिति है। यद्यपि ईश्वर का मूल उद्देश्य यह नहीं था बल्कि उसका मूल उद्देश्य मनुष्य की परिपूर्णता है किंतु चूंकि मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य के पास अधिकार व चयन शक्ति का होना आवश्यक है इसलिए इस अधिकार व चयन शक्ति के ग़लत प्रयोग द्वारा मनुष्यों का विनाश व पतन संभव है

ईश्वर चाहता है कि सारे लोग सत्यवादी व भले हों किंतु सच्चाई का रास्ता उन्होंने स्वंय चुना हो और किसी दूसरी शक्ति ने उन्हें इस पर विवश न किया हो। क्योंकि यदि दूसरी शक्ति उन्हें इस पर विवश करेगी तो फिर उनकी भूमिका का कोई महत्व नहीं रहेगा।

ईश्वरीय दूतों के संदर्भ में एक शंका यह भी की जाती है कि इस बात के दृष्टिगत कि ईश्वर यह चाहता है कि मनुष्य अधिक से अधिक उच्च श्रेणी व

परिपूर्णता तक पहुंचे तो क्या यह उचित नहीं था कि ईश्वर अपने दूतों द्वारा मनुष्य को इस प्रकृति में छुपे हज़ारों रहस्यों से अवगत करा देता जिससे मानव समाज की प्रगति की गति तेज़ होती। अर्थात जब ईश्वरीय दूतों को प्रकृति के समस्त रहस्यों का ज्ञान था तो उन्होंने मानव जीवन को सरल बनाने वाले इन साधनों के आविष्कार में मनुष्य की सहायता क्यों नहीं की। आज मनुष्य जिस प्रकार के आधुनिक साधनों से लाभ उठा रहा है वह साधन ईश्वरीय दूतों के काल में क्यों नहीं थे? क्योंकि ईश्वरीय दूतों ने इन साधनों के आविष्कार में मनुष्य की सहायता नहीं की और क्यों इस प्रकार के रहस्यों से पर्दा नहीं उठाया क्योंकि यदि वह ऐसा करते तो मनुष्य के जीवन को सुविधाजनक बनाने वाले आधुनिक साधनों से इतने वर्षों तक मानव समाज वंचित न रहता।

यह अत्यधिक महत्वपूर्ण शंका है इस शंका और इसके उत्तर पर अगले कार्यक्रम में विस्तार से चर्चा करेंगे।

# ईश्वरीय दूत और आधुनिक प्रगति

पिछले कार्यक्रम में हमने एक शंका का उल्लेख किया था कि कोई यह कह सकता है कि यदि ईश्वरीय दूत मानव समाज के कल्याण के लिए आए थे तो फिर उन्होंने क्यों नहीं मानव समाज के सामने ज्ञान पर पड़े सारे पर्दे हटा दिये ताकि मनुष्य प्रगति व विकास के उस स्थान पर एकदम से पहुंच जाता जहां तक उसे पहुंचने में शताब्दियां लगी हैं। शकां यह है कि यदि ईश्वर ने अपने दूतों को मानव समाज के कल्याण के लिए भेजा था तो फिर उसने क्यों नहीं अपने दूतों द्वारा मनुष्य को उदाहरण स्वरूप टीबी या इंफ्लुंज़ा या प्लेग जैसे रोगों का उपचार बताया जो शताब्दियों तक लाखों लोगों की मृत्यु का कारण बने और यह भी आपत्ति यह की जाती है कि ईश्वर को तो हर वस्तु का ज्ञान है तो फिर उसने क्यों नहीं अपने दूतों द्वारा मनुष्य को उदाहरण स्वरूप बिजली या आज के आधुनिक संचार माध्यमों से लाभ उठाने का अवसर प्रदान किया? अर्थात उसके दूतों ने क्यों नहीं इन सब वस्तुओं का आविष्कार किया? यदि वे ऐसा करते तो एक ओर तो समाज का भला होता और मनुष्य को वह सुविधाएं जिन्हें प्राप्त करने में सैंकड़ों वर्ष लग गये, बहुत पहले ईश्वरीय दूतों द्वारा प्राप्त हो जातीं और दूसरी ओर इस से समाज

पर ईश्वरीय दूतों के प्रभाव में वृद्धि होती और समाज पर उनकी पकड़ मज़बूत होती तथा इससे उन्हें अपना अभियान पूरा करने में भी सरलता होती और वे अपने ईश्वरीय लक्ष्य तक पहुंच जाते।

इस शंका का उत्तर यह है कि ईश्वरीय दूतों और ईश्वरीय संदेश की आवश्यकता उन विषयों के लिए होती है जिन तक मनुष्य अपने साधारण ज्ञान द्वारा नहीं पहुंच सकता किंतु यदि उसे उन विषयों का ज्ञान नहीं होगा तो वह परिपूर्णता तक भी नहीं पहुंच पाएगा। अर्थात ईश्वरीय दूत उन विषयों का वर्णन करते हैं जिन का ज्ञान परिपूर्णता और परलोक में सफलता के लिए अनिवार्य है किंतु वह विषय ऐसे हैं जिन्हें मनुष्य अपने साधारण ज्ञान से समझ नहीं सकता इसलिए ईश्वर ने इस प्रकार की सूचनाओं व जानकारियों से मनुष्य को अवगत कराने के लिए ईश्वरीय दूत और अपने संदेश का प्रंबंध किया है।

इस बात को हम यदि अधिक स्पष्ट करते हुए कहेगें कि ईश्वरीय दूतों का मुख्य कर्तव्य यह है कि वह लोगों की सही जीवन शैली और परिपूर्णता की ओर बढ़ने में सहायता करें ताकि वह हर स्थिति में अपने कर्तव्यों को पहचानें और अपनी योग्यताओं को अपने इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए प्रयोग करें। ईश्वरीय दूतों का यह अभियान और कर्तव्य मानव समाज के हर वर्ग से संबंधित और सब के लिए समान होता है अर्थात समाज के हर वर्ग के लिए मानवीय मूल्यों की प्राप्ति और ईश्वर के प्रति अपने कर्तव्यों की जानकारी आवश्यक है। इसके साथ ही यह भी जानना आवश्यक है कि सृष्टि के अन्य प्राणियों और वस्तुओं के प्रति उनका व्यवहार कैसा हो और अन्य लोगों के बारे में उनके क्या दायित्व हैं ताकि वे इन बातों पर ध्यान रखें और परिपूर्णिता और परलोक की सफलता तक पहुंच जाएं।

यह नियम समाज के किसी एक वर्ग, जाति या समुदाय या इतिहास के किसी युग से विशेष नहीं है बल्कि हर युग के और हर वर्ग, जाति व समुदाय के मनुष्य के लिए समान है किंतु योग्यताओं ,साधनों तथा प्राकृतिक व उद्योगिक साधनों में भिन्नता विशेष परिस्थितियों के अंतर्गत होती है और उनकी मनुष्य के परिपूर्णता और परलोक की सफलता में कोई भूमिका नहीं होती जैसाकि आज के आधुनिक

युग के अधिकांश आविष्कार संसारिक सुख भोग में सरलता का कारण है किंतु आध्यात्मिक विकास में उनकी कोई भूमिका नहीं है बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि इस प्रकार के साधनों से मनुष्य में आध्यात्मिक भावना कमज़ोर पड़ी है। इस प्रकार से निष्कर्ष यह निकला कि ईश्वर की तत्वदर्शिता व तत्वज्ञान के अनुसार मनुष्य भौतिक साधनों व वस्तुओं को प्रयोग करते हुए अपना संसारिक जीवन व्यतीत करे और बुद्धि, ईश्वरीय संदेश और ईश्वरीय दूतों की सहायता से अपना आध्यात्मिक जीवन सुव्यस्थित करे और अपनी परलोक की सफलता की दिशा का निर्धारण करे। यह जो विभिन्न समाजों की प्रगतियों व साधनों में अंतर होता है और इसी प्रकार विभिन्न युगों में सुविधाओं और साधनों में अंतर नज़र आता है तो वह वास्तव में सृष्टि की उस महा व्यवस्था के कारण है जो ईश्वर ने निर्धारित कर दी है अर्थात कारक और परिणाम के सिद्धान्त के अंतर्गत है। अर्थात ईश्वर ने इस सृष्टि में हर वस्तु निहित की है किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह हर प्रगति और विकास तक मनुष्य का हाथ पकड़ कर उसे पहुंचाएं। ईश्वर ने हर प्रकार के ज्ञान और हर वस्तु के लिए कुछ चरणों का निर्धारण किया है और मनुष्य जब भी उन चरणों से गुज़रेगा तो उसके परिणाम तक पहुचं जाएगा अब वह मनुष्य चाहे जिस धर्म जाति या समुदाय का हो या चाहे जिस युग का हो इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। यही कारण है कि हम वैज्ञानिक प्रगति और सुख सुविधाओं और साधनों की भरमार को ईश्वर के प्रेम व निकटता का प्रमाण नहीं

कह सकते। अर्थात यदि किसी धर्म के अनुयाईयों ने अत्यधिक वैज्ञानिक प्रगति की हो और उन्हें सुख सुविधाएं भी प्राप्त हों तो हम यह नहीं कह सकते कि यह उनके धर्म के सच्चे होने का प्रमाण हैं क्योंकि ज्ञान व प्रगति एक गंतव्य है जिसका एक निर्धारित मार्ग है और ईश्वर ने व्यवस्था यह की है कि जो भी उस निर्धारित मार्ग पर चलेगा वह उसके निर्धारित गंतव्य तक पहुंचेगा। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि ससांरिक साधन किसी भी रूप से आध्यात्मिक विकास में सहायक नहीं होते और ऐसा बहुत देखा गया है कि संसारिक साधनों से वंचित बहुत से लोग, आध्यात्म की ऊंची चोटियों तक पहुंचे होते हैं और संसारिक साधनों और समृद्धता में डूबे हुए लोग आध्यात्मिक रूप से खाली होते हैं किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि ईश्वरीय दूतों ने अपने मुख्य कर्तव्य के अलावा मनुष्य के संसारिक विकास पर ध्यान ही नहीं दिया। ईश्वरीय दूतों ने बेहतर संसारिक जीवन के लिए जहां भी ईश्वर ने उचित समझा प्रकृति के रहस्यों से पर्दा हटाकर मानव सभ्यता के विकास में उनकी सहायता की जिसके बहुत से उदाहरण ईश्वरीय दूतों की जीवनियों में मिलते हैं किंतु यह इस प्रकार के सारे काम ईश्वरीय दूतों के कर्तव्य से अतिरिक्त काम थे जो सेवाओं के अंतर्गत थे।

# ईश्वर और उसका ज्ञान

हमने ईश्वरीय दूतों की उपस्थिति की आवश्यकता और उस पर कुछ शंकाओं पर चर्चा की किंतु जब हम यह कहते हैं कि मानव ज्ञान सीमित है और मनुष्य केवल अपने ज्ञान के बल पर ही ईश्वरीय अर्थों की पूर्ण रूप से जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता और उसके लिए ईश्वरीय संदेश आवश्यक है तो एक अन्य विषय सामने आता है कि साधारण मनुष्य में वह क्षमता नहीं होती है जिसके द्वारा वह ईश्वरीय संदेश को सीधे रूप से प्राप्त कर सके अर्थात ईश्वरीय संदेश मानव ज्ञान को ईश्वरीय शिक्षाओं तक पहुंचाने के लिए आवश्यक है इस पर हम चर्चा कर चुके हैं किंतु यह भी स्पष्ट सी बात है कि हर मनुष्य में यह योग्यता नहीं होती कि वह ईश्वरीय संदेश स्वंय प्राप्त कर सके क्योंकि ईश्वरीय संदेश प्राप्त करने के लिए कुछ विशेषताओं की आवश्यकता होती है जिससे अधिकांश लोग वंचित होते हैं।

तो फिर ऐसी स्थिति में यदि सारे लोग ईश्वरीय संदेश प्राप्त नहीं कर सकते किंतु ईश्वरीय संदेश की आवश्यकता सबको है तो फिर एक ही दशा रह जाती है और वह यह कि कुछ विशेष लोग ईश्वरीय संदेश प्राप्त करें और फिर दूसरे लोगों तक उसे पहुंचाए और ताकि सब लोग उससे लाभ उठाएं और यह विशेष ही वास्तव में ईश्वरीय दूत होते हैं किंतु इस स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि इस बात की क्या ज़मानत है कि ईश्वरीय दूतों या उन विशेष लोगों ने ईश्वरीय संदेश सही रूप से प्राप्त किया है और फिर सही रूप से उसे लोगों तक पहुंचाया है?

फिर यह भी प्रश्न है कि यदि ईश्वरीय दूतों तक ईश्वर का संदेश किसी माध्यम द्वारा पहुंचा है तो वह माध्यम सही है और उसने पूरी सच्चाई के साथ ईश्वरीय संदेश ईश्वरीय दूतों तक पहुंचाया है इसकी क्या ज़मानत है?

यह एक तथ्य है कि ईश्वरीय संदेश मानव जीवन में पूरक की भूमिका निभाता है क्योंकि उसकी उपयोगिता ही यही है किंतु उसकी यह भूमिका उसी समय हो

सकती है जब उसकी सच्चाई में किसी भी प्रकार का संदेश न हो अर्थात ईश्वरीय संदेश को मुख्य स्रोत से एक साधारण मनुष्य तक पहुंचने के लिए जो व्यवस्था हो वह ऐसी हो कि उसके बारे में किसी को किसी भी प्रकार का संदेह न हो। अर्थात यह व्यवस्था ऐसी हो कि कोई यह न सोचे कि हो सकता है ईश्वरीय संदेश कुछ और रहा हो और ईश्वरीय दूत ने जान बूझकर या ग़लती से उसमें कोई फेरबदल कर दी है। यदि ईश्वरीय संदेश के बारे में इस प्रकार की शंका उत्पन्न हो जाएगी तो उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाएगी क्योंकि लोगों का उस पर से विश्वास उठ जाएगा और लोग हर आदेश के बारे में शंका में पड़ गये जाएगें कि यह आदेश ईश्वर का है या फिर उसमें कोई फेर- बदल कर दी गयी है? तो प्रश्न यह उठता है कि यह विश्वास कैसे प्राप्त किया जाए? स्पष्ट सी बात है कि यह विश्वास प्राप्त करना भी कठिन है क्योंकि यह संदेश उन लोगों तक पहुंचाया जाएगा जिनमें उस संदेश को सीधे रूप से प्राप्त करने की योग्यता नहीं होगी और जब उनमें इस प्रकार की योग्यता नहीं होगी तो स्पष्ट है कि उन्हें ईश्वरीय संदेश के सही प्रारूप का भी पूर्ण रूप से ज्ञान नहीं होगा और जब उन्हें ईश्वरीय संदेश के सही प्रारूप का ज्ञान नहीं होगा तो यह निर्णय भी अंसभव होगा कि संदेश सही प्रारूप में उन तक पहुंचा है या फिर उसमें कोई फेर- बदल की गयी है?

यह भी हम बता चुके हैं कि साधारण मनुष्य को परलोक के कल्याण के लिए ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यता इसलिए होती है क्योंकि उसकी बुद्धि की सीमा होती है इसीलिए वह ईश्वरीय संदेशों को अपनी बुद्धि पर भी परख नहीं सकता तो फिर आम मनुष्य को यह विश्वास कैसे हो कि ईश्वरीय दूत, ईश्वरीय संदेश के नाम पर जो कुछ उनसे कह रहे हैं वह वास्तव में ईश्वरीय संदेश है और उसमें किसी प्रकार की कोई फेर- बदल नहीं की गयी है? इस शंका का उत्तर इस प्रकार से दिया जा सकता है कि हम यह सिद्ध कर चुके हैं हमारी बुद्धि कुछ बौद्धिक तर्कों के आधार पर इस बात को आवश्यक समझती है कि मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए ईश्वरीय संदेश का होना आवश्यक है। इसी प्रकार हमारी बुद्धि यह बात बड़ी सरलता से समझ सकती है कि ईश्वरीय कृपा व ज्ञान के अंतर्गत यह आवश्यक है कि उसका संदेश सही रूप और प्रारूप में लोगों तक पहुंचे क्योंकि यदि सही रूप में नहीं पहुंचेगा या संदिग्ध होगा तो उससे लोगों का विश्वास उठ जाएगा और विश्वास उठने से उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाएगी और हम इस पर चर्चा कर चुके हैं कि ईश्वर के तत्व ज्ञान के दृष्टिगत इस बात की कोई संभावना नहीं है कि वह ऐसा कोई काम करे जो निरर्थक हो।

दूसरे शब्दों में जब यह ज्ञान हो गया कि ईश्वरीय संदेश एक या कई माध्यमों से जनता तक पहुंचते हैं ताकि मनुष्य पूर्णरूप से अपने अधिकार से लाभ उठा सके जो वास्तव में ईश्वर का उद्देश्य है तो फिर ईश्वर और उसके गुणों के संदर्भ में हमारी जो विचार धारा है और उसके तत्वज्ञान के आधार पर हमें यह भी मानना होगा कि यह ईश्वर अपने संदेश को सुरक्षित रूप से आम लोगों तक पहुंचाने की व्यवस्था करेगा क्योंकि यदि उसने इसकी कोई व्यवस्था नहीं की कि उसका संदेश उसके बंदो तक सुरक्षित रूप में और बिना किसी हेर- फेर के पहुंचें तो यह उसके तत्वज्ञान से दूर और दूरदर्शिता से ख़ाली काम होगा क्योंकि यदि हम यह मान लें कि ईश्वरीय संदेशों में फेर- बदल हो सकती है तो इसका अर्थ यह होगा कि ईश्वर अपने संदेश को गलत लोगों द्वारा फेर-बदल से बचाने में सक्षम नहीं है और हम चर्चा कर चुके हैं कि ईश्वर हर काम में सक्षम है और विवशता उसके निकट फटक भी नहीं सकती अर्थात ईश्वर कभी भी किसी भी दशा में विवश नहीं हो सकता बल्कि यह सोचा भी नहीं जा सकता कि वह विवश हो सकता है क्योंकि विवशता सीमा के कारण होती है और ईश्वर की कोई सीमा नहीं है। इन सब विषयों पर हम चर्चा कर चुके हैं।

इसके अतिरिक्त हम इस बात को भी तर्कों द्वारा स्वीकार कर चुके हैं कि ईश्वर को हर वस्तु और हर विषय का ज्ञान है बल्कि वह स्वंय ज्ञान है तो फिर इस विचार के साथ यह नहीं सोचा जा सकता कि वह अपने इस ज्ञान के होते हुए भी अपने संदेश को लोगों तक पहुंचाने के लिए ऐसे माध्यम का चयन करेगा जिससे ग़लती हो सकती हो या जो भूल कर संदेश में उलट- फेर कर सकता हो या उसे उसके असली प्रारूप में लोगों तक पहुंचाने में सक्षम न हो।

इस प्रकार से ईश्वर ऐसे साधन का चयन करेगा जो हर प्रकार से संतोषजनक हो क्योंकि अविश्वस्त साधन का चयन करने का अर्थ यह होगा कि उसे साधन के बारे में पूर्ण ज्ञान नहीं था और यह संभव नहीं है क्योंकि ईश्वर को हर वस्तु का ज्ञान है। तो इस प्रकार से बौद्धिक तर्कों से यह सिद्ध हो गया कि हमने ईश्वर के लिए जिन विशेषताओं को प्रमाणित किया है उनके आधार पर यह आवश्यक है कि उसके द्वारा चुने गये संदेशवाहक विश्वस्त हों और यह बात हमें बौद्धिक तर्कों के आधार पर स्वीकार करनी पड़ेगी और यह वह विषय है जिस पर स्वंय ईश्वरीय संदेशों में भी अत्यधिक बल दिया गया है।

## संसार में इतने पापी क्यों?

ईश्वरीय दूत किसी भी प्रकार से किसी एक क्षेत्र से विशेष नहीं थे और न ही किसी एक क्षेत्र में भेजे गये

यह एक तथ्य है कि लोगों के व्यवहारिक रूप से मार्गदर्शन के लिए दो चीज़ों का होना आवश्यक है। पहली चीज़ यह कि लोग स्वंय इस ईश्वरीय कृपा से लाभ उठाना चाहें और दूसरी चीज़ यह कि अन्य लोग ईश्वरीय कृपा से लाभ उठाने के मार्ग में बाधा उत्पन्न ना करें।

मनुष्य की परिपूर्णता के स्वेच्छिक होने की विशेषता के कारण यह आवश्यक है कि यह पूरी प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से आगे बढ़े कि सत्य व असत्य के दोनों पक्षों को सही व गलत मार्ग के चयन का अधिकार प्राप्त रहे और अब आगे की चर्चा

पिछली चर्चा में हम ने ईश्वरीय दूतों की व्यवस्था के बारे में शंका का वर्णन और उसके निवारण पर चर्चा की थी आज इस संदर्भ में की जाने वाली कुछ अन्य शंकाओं पर चर्चा कर रहे हैं।

कुछ लोग यह शंका करते हैं कि यदि ईश्वर ने अपने दूतों को लोगों के मार्गदर्शन के लिए भेजा और उसके दूतों ने यह काम पूरी ज़िम्मेदारी से किया तो फिर विश्व में इतने अधिक लोग पाप क्यों करते हैं ? और क्यों इतने व्यापक स्तर पर भ्रष्टाचार दिखाई देता है ? क्या यह संभव नहीं था कि ईश्वर कोई एसी व्यवस्था करता जिससे लोग पाप ही ना करते और पूरे विश्व में केवल भलाई और भले लोग ही रहते ? या कम से कम ईश्वरीय दूतों का अनुसरण करने वाले ही

एकजुट रहते किंतु हम देखते हैं कि एसा नहीं है और विभिन्न कालों में ईश्वरीय दूतों के अनुयाई भी एक दूसरे से लड़ते दिखाई देते हैं।

इस शंका का उत्तर देने से पूर्व हम उस चर्चा की याद दिलाना चाहेंगे जिसमें हम ने मनुष्य में चयन अधिकार की बात की थी । आपको याद होगा कि हमने कहा था कि ईश्वर ने संसार से सभी मनुष्यों को चयन शक्ति दी है। अर्थात हर मनुष्य को यह अधिकार दिया है कि वह सही या गलत मार्ग में से किसी एक मार्ग का चयन करे और यह अधिकार ईश्वरीय न्याय के अनुकूल है क्योंकि यदि ईश्वर लोगों को विवश करता तो फिर भले को भलाई का इनाम और बुरे को बुराई का दंड देना अर्थहीन हो जाता क्योंकि बुरा व्यक्ति कह सकता है कि यदि मैंने बुराई की है तो इसमें मेरा क्या दोष? ईश्वर ने मुझे बुराई करने पर विवश किया था । इसी प्रकार वह भले व्यक्ति को मिलने वाले इनाम पर भी आपत्ति कर सकता था कि यदि किसी ने कोई अच्छा काम किया है तो उसमें उसका क्या कारनामा है? ईश्वर ने चाहा कि वह अच्छाई करे इस लिए उसने अच्छाई की।

इसी प्रकार की आप्तियों और आतार्किक परिस्थितियों के दृष्टिगत ईश्वर ने मनुष्य को यह अधिकार दिया है अर्थात उसे चयन का अधिकार दिया है अलबता चयन में सरलता के लिए उसने मनुष्य के लिए बहुत से साधन भी उपलब्ध किये हैं ।

ईश्वर ने जो साधन उपलब्ध किये उनमें सर्वप्रथम मनुष्य की अपनी बुद्धि है अर्थात मनुष्य को बुद्धि जैसा उपहार दिया है जिसकी सहायता से वह भले बुरे की पहचान कर सकता है किंतु चूंकि बुद्धि पर कभी कभी वातावरण और घर परिवार का वातावरण प्रभाव डालता है इस लिए ईश्वर ने अपने दूतों को भेजा ताकि यदि कुछ वास्तविकताओं को बुद्धि भूल गयी है तो ईश्वरीय दूत उसे याद दिलाएं किंतु ईश्वर ने जो यह व्यवस्था की है उसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सारे मनुष्य इन सुविधाओं और साधनों से सही रूप में लाभ उठाएं।

ईश्वर ने मनुष्य को परिपूर्णता की ओर ले जाने की जो व्यवस्था की थी और जिसके अतंर्गत उसने दूत भेजे और उन्होंने कल्याण व परिपूर्णता के साधनों से मनुष्य को अवगत कराया तो यदि सारे मनुष्य उन साधनों और ईश्वर की इस कृपा से लाभान्वित होते तो निश्चित रूप से स्वर्ग धरती पर उतर आता अर्थात यह पूरा संसार पवित्रता का उदाहरण होता और भ्रष्टाचार व पाप तथा बुराई का कहीं कोई चिन्ह नहीं होता।

किंतु हम देखते हैं कि बहुत से लोग न तो अपनी बुद्धि की सुनते हैं और न ही ईश्वरीय दूतों के संदेशों पर ध्यान देते हैं और इसी लिए बुराईयों में डूब जाते हैं अब यदि ईश्वर कोई एसी व्यवस्था करता जिससे पूरे संसार में कोई बुराई ना कर पाता तो फिर मनुष्य से चयन का अधिकार छिन जाता जिसके बाद फिर स्वर्ग व नर्क की पूरी व्यवस्था अर्थहीन हो जाती।

अर्थात यदि ईश्वर अपनी शक्ति से इस संसार से बुराई मिटा देता तो फिर चयन शक्ति के स्वामी मनुष्य को इस संसार में भेजने और उसकी परीक्षा लेकर उसे दंड या पुरुस्कार देने की पूरी ईश्वरीय व्यवस्था ही चरमरा जाती।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य में अवज्ञा व पाप में रूचि का मुख्य कारण वास्तव में उसके भीतर चयन शक्ति की उपस्थिति है। यद्यपि ईश्वर का मूल उद्देश्य यह नहीं था बल्कि उसका मूल उद्देश्य मनुष्य की परिपूर्णता है किंतु चूंकि मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य के पास अधिकार व चयन शक्ति का होना आव्शयक है इस लिए इस अधिकार व चयन शक्ति के गलत प्रयोग द्वारा मनुष्यों का विनाश व पतन संभव है क्योंकि ईश्वर यह नहीं चाहता के सारे के सारे मनुष्य सत्य व भलाई के मार्ग पर चलें भले ही एसा करने की उनकी इच्छा ना हो और भले की उन्हें सत्य के मार्ग पर चलने के लिए विवश किया गया हो।

ईश्वर चाहता है कि सारे लोग सत्यवादी व भले हों किंतु सच्चाई का रास्ता उन्होंने स्वंय चुना हो और किसी दूसरी शक्ति ने उन्हें इसपर विवश ना किया हो। क्योंकि यदि दूसरी शक्ति उन्हें इस पर विवश करेगी तो फिर उनकी भूमिका का कोई महत्व नहीं रहेगा।

ईश्वरीय दूतों के संदर्भ में एक शंका यह भी की जाती है कि इस बात के दृष्टिगत कि ईश्वर यह चाहता है कि मनुष्य अधिक अधिक उच्च श्रेणी व परिपूर्णता तक पहुंचे तो क्या यह उचित नहीं था कि ईश्वर अपने दूतों द्वारा मनुष्य को इस प्रकृति में छुपे हज़ारों रहस्यों से अवगत करा देता जिससे मानव समाज की प्रगति की गति तेज़ होती।

अर्थात जब ईश्वरीय दूतों को प्रकृति के समस्त रहस्यों का ज्ञान था तो उन्होंने मानव जीवन को सरल बनाने वाले इन साधनों के अविष्कार में मनुष्य की सहायता क्यों नहीं की । आज मनुष्य जिस प्रकार के आधुनिक साधनों से लाभ

उठा रहा है वह साधन ईश्वरीय दूतों के काल में क्यों नहीं थे ? क्यों ईश्वरीय दूतों ने इन साधनों के अविष्कार में मनुष्य की सहायता नहीं की और क्यों इस प्रकार के रहस्यों से पर्दा नहीं उठाया क्योंकि यदि वह एसा करते तो मनुष्य के जीवन को सुविधाजनक बनाने वाले आधुनिक साधनों से इतने वर्षों तक मानव समाज वंचित न रहता।

यह अत्याधिक महत्वपूर्ण शंका है इस शंका और इसके उत्तर पर अगले कार्यक्रम में विस्तार से चर्चा करेंगे फिलहाल आज की चर्चा के मुख्य बिन्दुः

हर मनुष्य को यह अधिकार दिया है कि वह सही या गलत मार्ग में से किसी एक मार्ग का चयन करे और उसने चयन में सरलता के लिए मनुष्य के लिए बहुत से साधन भी उपलब्ध किये हैं । और यह अधिकार ईश्वरीय न्याय के अनुकूल है क्योंकि यदि ईश्वर लोगों को विवश करता तो फिर भले को भलाई का इनाम और बुरे को बुराई का दंड देना अर्थहीन हो जाता

ईश्वर ने जो साधन उपलब्ध किये उनमें सर्वप्रथम मनुष्य की अपनी बुद्धि है अर्थात मनुष्य को बुद्धि जैसा उपहार दिया है जिसकी सहायता से वह भले बुरे की पहचान कर सकता है किंतु चूंकि बुद्धि पर कभी कभी वातावरण और घर परिवार का वातावरण प्रभाव डालता है इस लिए ईश्वर ने अपने दूतों को भेजा

किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि सारे मनुष्य ईश्वर की इस कृपा से लाभ भी उठाएं। अगली चर्चा तक के लिए अनुमति दें।

## ईश्वरीय दूत और पाप

वास्तव में पाप, अपराध अथवा ग़लती का अज्ञानता व सूझबूझ से गहरा संबंध है। उदाहरण स्वरूप एक व्यक्ति अपनी आर्थिक समस्याओं के निवारण के लिए परिश्रम करने के स्थान पर चोरी की योजना बनाता है। अपने हिसाब से उसकी योजना पूरी होती है और वह हर पहलु पर ध्यान देते हुए कार्यवाही करता है और अपनी पहचान छुपाने की भी व्यवस्था करता है किंतु फिर भी वह पकड़ा जाता है क्योंकि उसे इस बात का ज्ञान नहीं था कि उदाहरण स्वरूप उस घर की निगरानी की जा रही है और उदाहरण स्वरूप सामने वाले घर में कई सुरक्षा कर्मी रात- दिन उस घर पर नज़र रखे हैं जिसमें वह चोरी करना चाहता है।

यदि उसे इस बात का ज्ञान होता तो वह कदापि उस घर में चोरी न करता।

इसके अतिरिक्त यदि उसमें सूझबूझ होती और बुद्धि पूरी होती तो वह चोरी के परिणामों पर ध्यान देता और दूरदर्शिता से सोचते हुए यह काम न करता। इसीलिए जिन लोगों को अपराध की बुराइयों और परिणामों का भलीभांति ज्ञान होता है।

वे कभी भी अपराध नहीं करते किंतु जिन लोगों का ज्ञान कम होता है और मूर्खों की भांति अपनी बनाई योजना से आश्वस्त होकर सोचते हैं कि वे पकड़े नहीं जाएगें वही अपराध करते हैं और पकड़े जाते हैं।

इस प्रकार से यह स्पष्ट हुआ कि अपराध की बुराई और परिणाम का यदि किसी को सही रूप से पूरी तरह से ज्ञान हो तो वह अपराध नहीं कर सकता।

बिल्कुल यही दशा ईश्वरीय दूतों की होती है। चूंकि ईश्वरीय संदेश प्राप्त करने की योग्यता के कारण उनका ज्ञान पूर्ण और वे विलक्षण बुद्धि के स्वामी तथा दूरदर्शिता व सूझबूझ की चरम सीमा पर होते हैं

इसलिए वे पाप नहीं करते हैं जो वास्तव में धार्मिक अपराध हैं क्योंकि उन्हें पाप की बुराई और उसके परिणाम का पूर्णरूप से ज्ञान होता है।

यह ज्ञान वास्तव में उनकी उन्हीं विशेष क्षमताओं व योग्यताओं के कारण होता है जिसके आधार पर उन्हें ईश्वरीय संदेश प्राप्त करने का पात्र समझा जाता है।

स प्रकार से हम देखते हैं कि ईश्वरीय दूत ज्ञान की उस सीमा पर होते हैं जहां उनकी सूझबूझ और वास्तविकता का ज्ञान उन्हें पाप नहीं करने देता और उनकी दूरदर्शिता व सम्पूर्ण बुद्धि इस बात का कारण बनती है

कि वे हर प्रकार की ग़लती से भी सुरक्षित रहते हैं क्योंकि ग़लती भी अज्ञानता का परिणाम है। उदाहरण स्वरूप कोई व्यक्ति वर्षों तक अपने घर में रहने

और प्रतिदिन आने- जाने के बाद अपने उस घर के मार्ग के बारे में कभी गलती नहीं कर सकता क्योंकि अपने घर के मार्ग के बारे में उसका ज्ञान सम्पूर्ण होता है

किंतु ईश्वरीय दूतों का ज्ञान हर मामले में सम्पूर्ण होता है इसलिए वे किसी भी मामले में ग़लती नहीं करते।

पैग़म्बरों अर्थात ईश्वरीय दूतों के पापों से पवित्र होने की चर्चा को आगे बढ़ाते हुए हम अपनी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए पाप,पुण्य ,भलाई व बुराई जैसे कामों की इरादे से लेकर काम करने की पूरी प्रक्रिया पर एक दृष्टि डालते हैं ताकि यह स्पष्ट हो सके कि ईश्वरीय दूत स्वेच्छा से पापों से दूर रहते हैं और जो

शक्ति उन्हें पापों से दूर रखती है वह उनकी अपनी होती है और इससे शक्ति के प्रभावशाली होने के कारण, मनुष्य को प्राप्त चयन अधिकार समाप्त नहीं होता।

वास्तव में हर काम चाहे वह सही हो या ग़लत इरादे और इच्छा से आरंभ होता है और काम करने पर जाकर समाप्त होता है किंतु इस पूरी प्रक्रिया में कई चरण आते हैं

जो वास्तव में प्रत्येक मनुष्य की मानसिक दशाओं के अनुसार कम या अधिक होते हैं। उदारहण स्वरूप जब एक मनुष्य कोई काम करने का इरादा करता है तो उसकी अच्छाइयों और बुराईयों और परिणाम के बारे में सोचता है यदि उसका ज्ञान कम किंतु दूरदर्शिता अधिक होती है तो वह उस बारे में जानकारी रखने वालों से भी पूछताछ करता है अन्य लोगों से सलाह- मशविरा करता है

फिर अपने हिसाब से उचित समय की प्रतीक्षा करता है और समय आने पर वह काम कर लेता है किंतु यदि उसमें आत्मविश्वास की कमी होगी तो यह प्रक्रिया उसके लिए लंबी होगी और वह बार- बार अपने फैसले को बदलेगा किंतु यदि उसमें आत्मविश्वास होगा तो वह प्रक्रिया अपेक्षाकृत छोटी होगी और इसी प्रकार यदि किसी के पास उस काम के बारे में पर्याप्त जानकारी के साथ होगी तो उसके लिए

काम करने की प्रक्रिया और अधिक छोटी होगी और उसके लिए ढेर सारे इरादों और मनोकामनाओं में से संभव व सरलता से पूरी की जाने वाली कामना तक पहुंचना सरल होगा। इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान व जानकारी, जहां गलतियों से बचाव को सुनिश्चित करती है वहीं सही मार्ग के चयन की संभावना को अधिक करती है। इसलिए जानकारी व अनुभव जितना अधिक होगा गलतियों से दूरी उतनी ही निश्चित होगी तो यदि हम किसी ऐसे व्यक्ति की कल्पना करें जिसकी जानकारी व अनुभव पूर्ण हो और उसमें किसी प्रकार की कोई कमी न हो तो फिर उससे गलती की संभावना नहीं होती किंतु उसमें संभावना न होने का अर्थ यह नहीं है कि वह गलतियों से दूर रहने पर विवश होता है और उसमें चयन शक्ति का विशेष अधिकार ही नहीं होता। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे यदि कोई बुद्धि रखने वाला व्यक्ति किसी शर्बत में विष गिरते अपनी आंखों से देख ले तो वह कदापि उस शर्बत को नहीं पीएगा।

अर्थात हम यह कह सकते हैं कि बुद्धि रखने वाला मनुष्य उस शर्बत को पी नहीं सकता किंतु पी नहीं सकता कहने का अर्थ यह नहीं है कि उसमें वह शर्बत पीने की क्षमता ही नहीं है और वह शर्बत न पीने पर विवश है और शर्बत पीने या न पीने के मध्य निर्णय का अधिकार ही उसके पास नहीं है यह अधिकार उसके पास है किंतु बुद्धि व विष के होने का ज्ञान उसे शर्बत पीने से रोक देता है

यही स्थिति ईश्वरीय दूतों की भी होती है एक मनुष्य होने के नाते और ईश्वर द्वारा मनुष्यों को प्रदान की गयी चयन शक्ति व अधिकार के दृष्टिगत यदि वे चाहें तो पाप कर सकते हैं किंतु उन्हें जो वास्तविकताओं का पूर्ण ज्ञान होता है और पापों की बुराइयों से चूंकि वे अवगत होते हैं इसलिए पूर्ण ज्ञान उनके भीतर पाप की इच्छा को जन्म ही नहीं लेने देता किंतु इसका अर्थ यह नहीं होता कि वे पाप करने में अक्षम और मनुष्य को प्रदान किये गये चयन अधिकार से वंचित होते हैं। वास्तव में पापों की बुराई ईश्वरीय दूतों के लिए उसी प्रकार स्पष्ट होती है जैसा बुद्धि रखने वाले के लिए विष की बुराईयों और जिस प्रकार बुद्धि रखने वाला व्यक्ति शर्बत में अपनी आखों से विष गिरते देखने के बाद अपनी इच्छा से उसे नहीं पीता उसी प्रकार ईश्वरीय दूत भी पापों से अपनी इच्छा से दूर रहते हैं और उनकी इस इच्छा का कारण उनका ज्ञान होता है।

## हर ग़लती पाप नहीं है

कुछ लोगों का कहना है कि यदि ईश्वर ने अपने दूतों को पापों से दूर रखा है और उनकी यह पवित्रता उनके कर्तव्यों के सही रूप से निर्वाह के लिए आवश्यक भी है तो इस स्थिति में अधिकार व चयन अपनी इच्छा की विशेषता उन में बाकी नहीं रहेगी तो इस दशा में उनके अच्छे कामों पर ईश्वर उन्हें फल भी नहीं दे सकता क्योंकि यदि उन्होंने अच्छा काम किया है तो इसलिए किया है कि ईश्वर ने उन्हें पापों से दूर रखा है और ईश्वर जिसे भी इस प्रकार से पापों से दूर रखेगा वह अच्छा काम ही करेगा।

इस शंका का निवारण किसी सीमा तक हमारी पिछली चर्चा में हो चुका है जिसका सार यह है कि पवित्र होने का अर्थ विवश होना नहीं है और पापों से दूरी वास्तव में उनकी स्वेच्छा से होती है

इस अंतर के साथ कि उन पर ईश्वर की विशेष कृपा होती है किंतु पवित्र लोगों और ईश्वरीय दूतों पर ईश्वर की विशेष कृपा, विशिष्ट लोगों को प्राप्त सुविधाओं

की भांति होती है। अतिरिक्त सुविधा, अतिरिक्त दायित्व और अतिरिक्त संवेदनशीलता का कारण होती है। हम अपनी इस बात को एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं। एक कंपनी में बहुत से कर्मचारी विभिन्न प्रकार के काम करते हैं

और सबका उद्देश्य कंपनी को लाभ पहुंचाना होता है और सब एक निर्धारित समय पर कंपनी में आते और निर्धारित समय पर जाते हैं किंतु यदि हम वेतन और सुविधाओं पर नज़र डालें तो बहुत अधिक अंतर नज़र आता है। उदाहरण स्वरूप गेट पर बैठे हुए दरबान और कपंनी के एक निदेशक को प्राप्त सुविधाओं और वेतन में बहुत अंतर होता है।

दरबान कंपनी की रखवाली करता है और निदेशक व्यापारिक मामलों की देखभाल करता है किंतु क्या दरबान यह कह सकता है कि यदि मुझे भी निदेशक को प्राप्त होने वाला वेतन और सुविधाएं मिल जाएं तो मैं भी व्यापारिक मामले देख सकता हूं कदापि नहीं क्योंकि उसे ज्ञात है कि निदेशक कंपनी के महत्वपूर्ण और व्यापारिक मामले देखता है इसलिए उसे वेतन और सुविधाएं मिली हैं न यह कि चूंकि उसे सुविधा और भारी वेतन मिलता है इसलिए वह व्यापारिक मामले देखने की दक्षता प्राप्त कर लेता है। स्पष्ट है कि उस उसकी दक्षता व शिक्षा व विशेषताओं के कारण निदेशक बनाया गया और व्यापारिक मामलों को देखने का

काम सौंपा गया जिसके बाद उसे भारी वेतन और सुविधाएं दी गयीं। इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि ग़लती होने पर जैसा दंड निदेशक को मिलेगा वैसा दरबान को नहीं मिलेगा। ठीक यही स्थिति ईश्वरीय दूतों की होती है। उनमें विशेष प्रकार की दक्षता व विशेषताएं होती हैं जिसके कारण उन्हें ईश्वरीय दूत बनाया जाता है और चूंकि इतना महत्वपूर्ण काम उन्हें सौंपा जाता है इसलिए उन पर ईश्वर की विशेष कृपा भी होती है जो पापों से दूर रहने में उनकी सहायता करती है किंतु इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि उनके अच्छे कर्म का जिस प्रकार से प्रतिफल अधिक होता है उसी प्रकार उनकी गलतियों का दंड भी साधारण लोगों से अधिक कड़ा होता है जिससे संतुलन स्थापित हो जाता है।

यह अलग बात है कि हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि विभिन्न कारणों से यह निश्चित है कि ईश्वरीय दूत और ईश्वर के विशेष दास ग़लती और पाप नहीं करते किंतु बौद्धिक रूप से यह संभव है।

ईश्वरीय दूत और उसके विशेष दासों की पापों से पवित्रता की बात पर यह भी कुछ लोग कहते हैं कि पैग़म्बरों, इमामों तथा ईश्ववरीय दूतों की प्रार्थनाओं का इतिहास में उल्लेख है और उन्होंने अपनी इन प्रार्थनाओं में स्वंय ही ईश्वर से अपनी पापों को क्षमा कर देने की गुहार की है तो फिर जब वे स्वयं ही अपने पापों

को स्वीकार कर रहे हैं तो हम कैसे यह कह सकते हैं कि वे पापों से पवित्र होते हैं।

इस शंका का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि ईश्वरीय दूत थोड़े बहुत अंतर के साथ आध्यात्म की परिपूर्णता व चरम सीमा पर होते थे और अपने पद की संवेदनशीलता और आध्यात्मिक स्थान के कारण स्वंय को ईश्वर के अधिक निकट समझते थे इसलिए वे आम लोगों के लिए अत्यधिक साधारण ग़लती और धार्मिक दृष्टि से पाप के दायरे में न आने वाले कामों को भी पाप समझते थे इसलिए यदि इस प्रकार का कोई काम कर लेते थे तो ईश्वर से उसके लिए क्षमा मांगते थे।

हम एक उदाहरण से अपनी बात अधिक स्पष्ट करना चाहेंगे आप किसी देश के अत्यन्त सम्मानीय बुद्धिजीवी या उदाहरण स्वरूप प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति की कल्पना करें जो एक सड़क पर ज़ोर- ज़ोर से ठहाके लगाता हुआ अपने मित्रों के साथ चल रहा हो कभी- कभी मज़ाक में दो चार धौल भी अपने मित्र को लगा देता हो। आप की दृष्टि में यह काम कैसा है?

निश्चित रूप से आप कहेंगे कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए अब बाद में वह बुद्धिजीवी या प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति टीवी पर आकर लोगों से क्षमा मांगे और यह कहे कि मुझ से ग़लती हो गयी आशा है

कि जनता मुझे माफ करेगी तो क्या पुलिस उसकी इस स्वीकारोक्ति कारण गिरफतार कर सकती है और यह कह सकती है कि उसने स्वंय अपनी ग़लती मानी है?

या यह कि उसने अपने पद की मर्यादा नहीं रखी जबकि उसने शपथ ग्रहण की थी? कदापि नहीं। क्योंकि उसने जो काम किया है वह ग़लती है किंतु ऐसी ग़लती नहीं है

जो गैर क़ानूनी काम हो या उसने जो शपथ ग्रहण की थी उसके विपरीत हो बल्कि उसका काम, स्वंय उसकी विशेषताओं के कारण, ग़लत था किंतु गलत होने के बावजूद न तो अपराध के दायरे में आता है और न ही पद की मर्यादा तोड़ना है। ठीक यही दशा ईश्वरीय दूतों की है बहुत से ऐसे काम हैं जो उन की अपनी विशेषताओं व स्थान के कारण स्वंय उनकी दृष्टि में उचित नहीं होते और वे उस काम को अपने लिए ग़लत समझते हैं इसलिए यदि इस प्रकार का कोई काम कर

लेते हैं तो उसके लिए भी ईश्वर से क्षमा मांगते हैं किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने जो अपनी ग़लती या पाप के लिए ईश्वर से क्षमा मांगी है वह ग़लती और पाप वास्तव में धार्मिक रूप से भी पाप था क्योंकि हर पाप ग़लती है किंतु हर ग़लती पाप नहीं है जैसे हर साधारण व्यक्ति के लिए हर अपराध ग़लती है किंतु हर ग़लती अपराध नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि ईश्वरीय दूतों का कर्तव्य मनुष्य का मार्गदर्शन था और मानव जाति के मार्गदर्शन करने की ज़िम्मेदारी, मानव जीवन के सभी आयामों के लिए एक सर्वव्यापी कर्तव्य था।

यही कारण है कि ईश्वरीय दूतों ने हर दृष्टि से मानव जाति का मार्गदर्शन किया तो फिर यह कैसे हो सकता था कि प्रार्थना जैसे विषय में जिस पर ईश्वर ने भी अत्यधिक बल दिया है

वह मनुष्य का मार्गदर्शन न करते। इसीलिए उन्होंने साधारण मनुष्य द्वारा की जाने वाली प्रार्थना का व्यवहारिक नमूना पेश करने के लिए भी इस प्रकार की प्रार्थनाएं की है

और मनुष्य को व्यवहारिक रूप से यह सिखाना चाहा है कि ईश्वर से अपने पापों को क्षमा करने की प्रार्थना किस प्रकार की जाए।

ईश्वरीय संदेश मानवजीवन में पूरक की भूमिका निभाता है

ईश्वरीय दूत उन विषयों का वर्णन करते हैं जिन का ज्ञान , परिपूर्णता और परलोक में सफलता के लिए अनिवार्य है किंतु वह विषय एसे हैं

जिन्हें मनुष्य अपने साधारण ज्ञान से समझ नहीं सकता इस लिए ईश्वर ने इस प्रकार की सूचनाओं व जानकारियों से मनुष्य को अवगत कराने के लिए ईश्वरीय दूत और अपने संदेश का प्रंबंध किया है

किंतु ईश्वरीय दूतों पर मनुष्य के संसारिक जीवन को सुधारने का कर्तव्य नहीं होता क्योंकि संसारिक सुविधाओं और साधनों का आध्यात्मिक दशा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यद्यपि ईश्वरीय दूतों का यह कर्तव्य नहीं था कि वे मनुष्य के संसारिक जीवन को सरल बनाने के साधन जुटाएं किंतु इसके बावजूद बहुत से ईश्वरीय दूतों ने एसा किया है

और उनके मार्गदर्शनों से मानव जीवन सरल और सुविधापूर्ण हुआ है।

हमने ईश्वरीय दूतों की उपस्थिति की आवश्यकता और उस पर कुछ शंकाओं पर चर्चा की किंतु जब हम यह कहते हैं कि मानव ज्ञान सीमित है और मनुष्य केवल अपने ज्ञान के बल पर ही ईश्वरीय अर्थों की पूर्ण रूप से जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता और उसके लिए ईश्वरीय संदेश आवश्यक है तो एक अन्य विषय समाने आता है कि साधारण मनुष्य में वह क्षमता नहीं होती है जिसके द्वारा वह ईश्वरीय संदेश को सीधे रूप से प्राप्त कर सकें अर्थात ईश्वरीय संदेश मानव ज्ञान को ईश्वरीय शिक्षाओं तक पहुंचाने के लिए आवश्यक है इस पर हम चर्चा कर चुके हैं किंतु यह भी स्पष्ट सी बात है कि हर मनुष्य में यह योग्यता नहीं होती कि वह ईश्वरीय संदेश स्वंय प्राप्त कर सके क्योंकि ईश्वरीय संदेश प्राप्त करने के लिए कुछ विशेषताओं की आवश्यकता होती है जिससे अधिकांश लोग वंचित होते हैं।

तो फिर एसी स्थिति में यदि सारे लोग ईश्वरीय संदेश प्राप्त नहीं कर सकते किंतु ईश्वरीय संदेश की आवश्यकता सब को है तो फिर एक ही दशा रह जाती है और वह यह कि कुछ विशेष लोग ईश्वरीय संदेश प्राप्त करें और फिर दूसरे लोगों तक उसे पहुंचाए और ताकि सब लोग उससे लाभ उठाएं और यह विशेष ही वास्तव में ईश्वरीय दूत होते हैं किंतु इस स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि इस बात की

क्या ज़मानत है कि ईश्वरीय दूतों या उन विशेष लोगों ने ईश्वरीय संदेश सही रूप से प्राप्त किया है और फिर सही रूप से उसे लोगों तक पहुंचाया है?

फिर यह भी प्रश्न है कि यदि ईश्वरीय दूतों तक ईश्वर का संदेश किसी माध्यम द्वारा पहुंचा है तो वह माध्यम सही है

और उसने पूरी सच्चाई के साथ ईश्वरीय संदेश ईश्वरीय दूतों तक पहुंचाया है इसकी क्या ज़मानत है?

यह एक तथ्य है कि ईश्वरीय संदेश मानवजीवन में पूरक की भूमिका निभाता है क्योंकि उसकी उपयोगिता ही यही है किंतु उसकी यह भूमिका उसी समय हो सकती है जब उसकी सच्चाई में किसी भी प्रकार का संदेश न हो अर्थात ईश्वरीय संदेश को मुख्य स्रोत से एक साधारण मनुष्य तक पहुंचने के लिए जो व्यवस्था हो

वह ऐसी हो कि उसके बारे में किसी को किसी भी प्रकार का संदेह न हो।

अर्थात यह यह व्यवस्था एसी हो कि कोई यह न सोचे कि हो सकता है ईश्वरीय संदेश कुछ और रहा हो और ईश्वरीय दूत ने जानबूझकर या गलती से उसमें कोई

फेरबदल कर दी है। यदि ईश्वरीय संदेश के बारे में इस प्रकार की शंका उत्पन्न हो जाएगी तो उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाएगी क्योंकि लोगों का उस पर से विश्वास उठ जाएगा और लोग हर आदेश के बारे में शंका में पड़ गये जाएगें कि यह आदेश ईश्वर का है या फिर उसमें कोई फेर बदल कर दी गयी है? तो प्रश्न यह उठता है कि यह विश्वास कैसे प्राप्त किया जाए?

स्पष्ट सी बात है कि जब यह विश्वास प्राप्त करना भी कठिन है क्योंकि यह संदेश उन लोगों तक पहुंचाया जाएगा जिनमें उस संदेश को सीधे रूप से प्राप्त करने की योग्यता नहीं होगी और जब उनमें इस प्रकार की योग्यता नहीं होगी तो स्पष्ट है कि उन्हें ईश्वरीय संदेश के सही प्रारूप का भी पूर्ण रूप से ज्ञान नहीं होगा और जब उन्हें ईश्वरीय संदेश के सही प्रारूप का ज्ञान नहीं होगा तो यह निर्णय भी अंसभव होगा कि संदेश सही प्रारूप में उन तक पहुंचा है या फिर उसमें कोई फेर बदल की गयी है?

यह भी हम बता चुके हैं कि साधारण मनुष्य को परलोक के कल्याण के लिए ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यता इस लिए होती है क्योंकि उसकी बुद्धि की सीमा होती है इसी लिए वह ईश्वरीय संदेशों को अपनी बुद्धि पर भी परख नहीं सकता तो फिर आम मनुष्य को यह विश्वास कैसे हो कि ईश्वरीय दूत , ईश्वरीय संदेश के

नाम पर जो कुछ उन से कह रहे हैं वह वास्तव में ईश्वरीय संदेश है और उसमें किसी प्रकार की कोई फेर बदल नहीं की गयी है ?

इस शंका का उत्तर इस प्रकार से दिया जा सकता है कि हम यह सिद्ध कर चुके हैं हमारी बुद्धि कुछ बौद्धिक तर्कों के आधार पर इस बात को आवश्यक समझती है कि मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए ईश्वरीय संदेश का होना आवश्यक है। इसी प्रकार हमारी बुद्धि यह बात बड़ी सरलता से समझ सकती है कि ईश्वरीय कृपा व ज्ञान के अंतर्गत यह आवश्यक है कि उसका संदेश सही रूप और प्रारूप में लोगों तक पहुंचे क्योंकि यदि सही रूप में नही पहुंचेगा या संदिग्ध होगा तो उससे लोगों का विश्वास उठ जाएगा और विश्वास उठने से उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाएगी और हम इस पर चर्चा कर चुके हैं कि ईश्वर के तत्व ज्ञान के दृष्टिगत इस बात की कोई संभावना नहीं है कि वह एसा कोई काम करे जो निरर्थक हो।

दूसरे शब्दों में जब यह ज्ञान हो गया कि ईश्वरीय संदेश एक या कई माध्यमों से जनता तक पहुंचते है ताकि मनुष्य पूर्ण रूप से अपने अधिकार से लाभ उठा सके जो वास्तव में ईश्वर का उद्देश्य है

तो फिर ईश्वर और उसके गुणों के संदर्भ में हमारी जो विचार धारा है और उसके तत्वज्ञान के आधार पर हमें यह भी मानना होगा कि यह ईश्वर अपने संदेश को सुरक्षित रूप से आम लोगों तक पहुंचाने का व्यवस्था करेगा क्योंकि यदि उसने इसकी कोई व्यवस्था नहीं की कि उसका संदेश उसके दासों तक सुरक्षित रूप में और बिना किसी हेर फेर के पहुंचे तो यह उसके तत्वज्ञान से दूर और दूरदर्शिता से ख़ाली काम होगा क्योंकि यदि हम यह मान लें कि ईश्वरीय संदेशों में फेर बदल हो सकती है तो इसका अर्थ यह होगा कि ईश्वर अपने संदेश को गलत लोगों द्वारा फेरबदल से बचाने में सक्षम नहीं है और हम चर्चा कर चुके हैं कि ईश्वर हर काम में सक्षम है और विवशता उसके निकट भी फटक नहीं सकती और अर्थात ईश्वर कभी भी किसी भी दशा में विवश नहीं हो सकता बल्कि यह सोचा भी नहीं जा सकता कि वह विवश हो सकता है क्योंकि विवशता सीमा के कारण होती है और ईश्वर की कोई सीमा नहीं है। इन सब विषयों पर हम चर्चा कर चुके हैं।

इसके अतिरिक्त हम इस बात को भी तर्कों द्वारा स्वीकार कर चुके हैं कि ईश्वर को हर वस्तु और हर विषय का ज्ञान है बल्कि वह स्वंय ज्ञान है तो फिर इस विचार के साथ यह नहीं सोचा जा सकता कि वह अपने इस ज्ञान के होते हुए भी अपने संदेश को लोगों तक पहुंचाने के लिए एसे माध्यम का चयन करेगा जिस से

गलती हो सकती हो या जो भूल कर संदेश में उलट फेर कर सकता हो या उसे उसके असली प्रारूप में लोगों तक पहुंचाने में सक्षम न हो।

इस प्रकार से ईश्वर एसे साधन का चयन करेगा जो हर प्रकार से संतोषजनक हो क्योंकि अविश्वस्त साधन का चयन करने का अर्थ यह होगा कि उसे साधन के बारे में पूर्ण ज्ञान नहीं था और यह संभव नहीं है क्योंकि ईश्वर को हर वस्तु का ज्ञान है और यदि यह मान लें कि उसे ज्ञान था तो फिर इसका मतलब यह होगा कि उसने इस बात की जानकारी के बावजूद के उसके द्वारा चुना गया साधन उसके संदेश में फेर बदल करेगा , उस साधन को चुना और यह संभव नहीं है क्योंकि कोई साधारण व्यक्ति भी अपना संदेश ले जाने के लिए किसी ऐसे साधन को नहीं चुनेगा

जिसके द्वारा फेर बदल का उसे ज्ञान हो तो फिर ईश्वर की बात ही क्या, तो इस प्रकार से बौद्धिक तर्कों से यह सिद्ध हो गया कि हमने ईश्वर के लिए जिन विशेषताओं को प्रमाणित किया है उनके आधार पर इस आवश्यक है कि उसके द्वारा चुने गये संदेशवाहक विश्वस्त हों और यह बात हमें बौद्धिक तर्कों के आधार पर स्वीकार करनी पड़ेगी और यह वह विषय है जिस पर स्वंय ईश्वरीय संदेशों में भी अत्यधिक बल दिया गया है।

**आज के मुख्य बिन्दुओं पर एक दृष्टिः**

ईश्वरीय संदेश मनुष्य की लोक व परलोक की सफलता व कल्याण के लिए आवश्यक है किंतु इसी प्रकार इस बात का विश्वास भी आवश्यक है कि ईश्वर का संदेश अपने सही रूप में लोगों तक पहुंचा है क्योंकि फेर बदल की आशंका के साथ ईश्वरीय संदेश की उपयोगितता समाप्त हो जाएगी।

ईश्वर के तत्व ज्ञान के दृष्टिगत और बौद्धिक तर्कों के आधार पर हम यह कदापि नहीं सोच सकते कि ईश्वर अपने संदेश को लोगों तक पहुंचाने के लिए एसी व्यवस्था का चयन करेगा जिस के बारे में लोगों को संदेश हो सकता है या जिसके बारे में शंका उत्पन्न हो सके।

# चमत्कार एवं ईश्वरीय दूत

इस संसार में घटने वाली घटनाएं मूल रूप से उन कारकों का परिणाम होती हैं जो प्राकृतिक रूप से निर्धारित होती हैं और उन्हें प्रयोगों द्वारा समझा जा सकता है उदाहरण स्वरूप रसायन व भौतिक शास्त्र द्वारा प्रयोगों से बहुत से प्रक्रियाओं को पूर्ण रूप से समझा जा सकता है किंतु कुछ ऐसे काम भी होते हैं

जिनके कारणों को भौतिक व रासायनिक प्रयोगों से समझना संभव नहीं होता। इस प्रकार के कामों और प्रक्रियाओं को असाधारण कार्य कहा जाता है।

वास्तव में असाधारण कार्यों को एक दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है एक वह साधारण कार्य जो सामान्य और साधारण कारकों के अंतर्गत नहीं होते किंतु एक सीमा तक उसके कारकों पर मनुष्य का नियंत्रण होता है।

अर्थात विदित रूप से कुछ ऐसे काम होते हैं जिन्हें करना हर एक मनुष्य के लिए संभव नहीं होता किंतु जो भी उसकी शर्तों को पूरा करे और उसके लिए आवश्यक अभ्यास करे उसमें इस प्रकार के असाधारण काम करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार के असाधारण कार्य योगियों और जादूगरों द्वारा दिखाई देते हैं।

निश्चित रूप से एक योगी और जादूगर जो तमाशा व खेल दिखाता है वह देखने में असाधारण नज़र आता है

और हर एक के लिए वैसे काम करना संभव नहीं होता किंतु इसके बावजूद हम उसे वैसा चमत्कार नहीं कह सकते जिससे किसी का ईश्वरीय दूत होना सिद्ध होता हो क्योंकि वह काम असाधारण होते हैं किंतु मनुष्य के लिए उसकी क्षमता प्राप्त करना संभव होता है।

असाधारण कार्यों का दूसरा प्रकार वह असाधारण काम हैं जो ईश्वर की विशेष अनुमति पर निर्भर होते हैं। इस प्रकार के असाधारण कार्य की विशेषता यह होती है कि उसे केवल वही लोग कर सकते हैं जिनका ईश्वर से विशेष संपर्क हो और

इस प्रकार के असाधारण कार्य की क्षमता, अभ्यास या तपस्या से प्राप्त नहीं हो सकती, बल्कि इसके लिए ईश्वर की विशेष दृष्टि आवश्यक है।

इस प्रकार के असाधारण कार्य की जिसके लिए ईश्वर की विशेष कृपा और उससे विशेष संबंध आवश्यक होता है मूल रूप से दो विशेषताएं होती हैं,

पहली विशेषता यह होती है कि इस प्रकार के असाधारण कार्य सीखे या सिखाए नहीं जा सकते और उस पर किसी अधिक शक्तिशाली शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ता। अर्थात पहले प्रकार के असाधारण कार्य जिसकी क्षमता प्राप्त की जा सकती है अधिक क्षमता रखने वाले मनुष्य के असाधारण कार्य से प्रभावित हो जाते हैं।

उदाहरण स्वरूप यदि कोई जादूगर कोई असाधारण कार्य करता है तो संभव है कि उससे बड़ा जादूगर उसके काम को प्रभावित कर दे किंतु दूसरे प्रकार का असाधारण कार्य जो ईश्वर की अनुमति से होता है उस पर किसी भी अन्य शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ सकता।

ईश्वर की विशेष अनुमति से होने वाले कार्य पापी व्यक्ति नहीं कर सकता किंतु यह भी आवश्यक नहीं है कि ईश्वर की विशेष अनुमति से किये जाने वाले कार्य

केवल ईश्वरीय दूत ही करें बल्कि यह भी संभव है कि ईश्वर से निकट और पापों से दूर रहने वाला कोई ऐसा व्यक्ति भी इस प्रकार के काम करे जो ईश्वरीय दूत के पद पर न हो तो इस दशा में उसका काम यद्यपि असाधारण होगा और ईश्वर की विशेष अनुमति से होगा और उसकी क्षमता प्राप्त करना हर एक के लिए संभव नहीं होगा और उस पर कोई अन्य शक्ति अपना प्रभाव नहीं डाल पाएगी किंतु इन सब के बावजूद उसके काम को विशेष अर्थों में मोजिज़ा या चमत्कार का नाम नहीं दिया जा सकता बल्कि इस प्रकार के काम भी साधारण चमत्कार और करामत की सूचि में आते हैं। यह ठीक इसी प्रकार है जैसे ईश्वर की ओर से प्राप्त होने वाली हर विद्या व शिक्षा को ईश्वरीय संदेश नहीं कहा जा सकता। क्योंकि संभव है बहुत से पवित्र और ईश्वर से निकट लोग, ईश्वरीय माध्यमों से संदेश प्राप्त करें किंतु हमने जिस ईश्वरीय संदेश की बात की है वह केवल वही संदेश हो सकता है जो ईश्वरीय दूतों को प्राप्त होता है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट हुआ कि वह असाधारण कार्य जो ईश्वर की विशेष अनुमति से हो और जिसका करने वाला ईश्वरीय दूत हो उसे ही ईश्वरीय दूतों की पैग़म्बरी को प्रमाणित करने वाला चमत्कार माना जा सकता है। इसी प्रकार हमारी अब तक की चर्चा से यह भी स्पष्ट हो गया कि हम किस प्रकार ईश्वरीय असाधारण कार्य और मानवीय असाधारण कार्यों के अंतर को पहचानें।

स्पष्ट है कि यदि कोई पापी व बुराई करने वाला व्यक्ति कोई असाधारण कार्य करता है तो हमें यह जान लेना चाहिए कि उसका यह विशेष कार्य ईश्वरीय अनुमति से नहीं है क्योंकि ईश्वर बुराई करने वाले को इस प्रकार की क्षमता कदापि प्रदान नहीं कर सकता। अब यदि कोई असाधारण कार्य करता है और इसके साथ ही शैतान का अनुयायी भी हो और बुरे काम भी करता हो तो इसका अर्थ यह होगा कि उसका ईश्वर से नहीं शैतान से संबंध है इस लिए यदि वह ईश्वरीय दूत होने या भगवान होने का दावा करे जैसा कि पहले कई लोग कर चुके हैं और आज भी बहुत से लोग इस प्रकार का दावा करते हैं, तो उसका यह दावा झूठा होगा और एक धार्मिक व्यक्ति को उसके आदेशों का पालन करने पर स्वयं को बाध्य नहीं समझना चाहिए।

यहां पर यह भी स्पष्ट करें कि ईश्वरीय अनुमति से होने वाले असाधारण कार्य वास्तव में ईश्वर के कामों में गिने जाते हैं यह अलग बात है कि चूंकि ईश्वरीय दूत इस प्रकार के कामों के लिए साधन होते हैं इसलिए इन कामों को उनके काम भी कहा जाता है जैसे हम कहते हैं कि ईश्वरीय दूत हज़रत ईसा मसीह मृत व्यक्ति को जीवित कर देते थे किंतु वास्तव में यह काम ईश्वर का होता था और वे केवल साधन थे।

ईश्वरीय दूतों की सत्यता प्रमाणित करने वाले असाधारण कार्य की एक अन्य विशेषता यह होती है कि इस प्रकार के असाधारण कार्य का उद्देश्य ईश्वरीय दूतों की सत्यता को प्रमाणित करना होता है इस आधार पर यदि कोई ईश्वरीय दूत कोई ऐसा असाधारण काम करे जिस का उद्देश्य उसकी पैगम्बरी को सही सिद्ध करना न हो तो उसका यह काम असाधारण कार्य होने और ईश्वर की अनुमति के बाद किये जाने के बावजूद मोजिज़ा नहीं कहा जाएगा।

## चमत्कार और उससे संबंधित शंकायें

चमत्कार के संदर्भ में कुछ शंकाएं प्रस्तुत की जाती हैं जिनमें कुछ का यहां पर हम वर्णन और उनका निवारण पेश कर रहे हैं।

पहली शंका यह पेश की जाती है कि हर भौतिक प्रक्रिया के लिए विशेष कारक की आवश्यकता होती है जिसे वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा समझा जा सकता है अब यदि कोई ऐसी प्रक्रिया नज़र आये जिसके कारक का ज्ञान न हो तो उसे असाधारण प्रक्रिया उसी समय तक कहा जा सकता है जब तक उसके कारक का पता न चला हो किंतु कारक का ज्ञान न होना इस अर्थ में नहीं है कि उसका कोई कारक ही नहीं क्योंकि यदि हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि चमत्कार के कारक का कभी पता ही नहीं लगाया जा सकता है तो इसका अर्थ यह होगा कि हम कारक व परिणाम के मूल सिद्धांत का इन्कार कर रहे हैं। अर्थात इस शंका के

अंतर्गत यह कहा जाता है कि चमत्कार इसलिए असाधारण होता है क्योंकि उसके कारक का ज्ञान नहीं होता किंतु जब उसके कारक का भौतिक प्रयोगों द्वारा ज्ञान हो जाए तो फिर व चमत्कार नहीं रह जाता।

इस शंका का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि कारक व परिणाम के सिद्धान्त का अर्थ केवल यह होता है कि हर प्रक्रिया व परिणाम के लिए एक कारक की आवश्यकता होती है किंतु इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि निश्चित रूप से उस कारक का ज्ञान होना भी आवश्यक है। अर्थात यदि हम यह कहें कि चमत्कार या असाधारण कार्य के कारण को प्रयोगशालाओं में पहचाना नहीं जा सकता तो यह बात कारक व परिणाम के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं होगी क्योंकि यह तार्किक सिद्धान्त है कि किसी विषय का ज्ञान न होने का अर्थ यह नहीं है कि उसका अस्तित्व ही नहीं है। यूं भी प्रयोगशाला में केवल भौतिक कारकों का ही पता लगाया जा सकता है किंतु भौतिकता से परे विषयों का ज्ञान किसी भी प्रकार से प्रयोगशालाओं में प्रयोग द्वारा नहीं समझा जा सकता।

इसके अतिरिक्त चमत्कार के बारे में यह भी कहना सही नहीं है कि वह उसी समय तक चमत्कार रहेगा जब तक उसके कारकों का ज्ञान न हो क्योंकि यदि उन कारकों को भौतिक साधनों से पहचानना संभव होता तो फिर वह असाधारण कार्य

भी सामान्य व साधारण भौतिक प्रक्रियाओं की भांति होते और उसे किसी भी स्थिति में असाधारण कार्य नहीं कहा जा सकता और यदि उसके कारकों का ज्ञान असाधारण रूप से हो तो फिर वह भी मोजिज़ा होगा।

चमत्कार पर एक शंका यह की जाती है कि पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मोहम्मद लोगों द्वारा मोजिज़े व चमत्कार दिखाने की मांगों को प्रायः अस्वीकार कर दिया करते थे तो यदि मोजिज़ा और चमत्कार पैग़म्बरी सिद्ध करने का साधन है कि तो वे ऐसा क्यों करते थे? इस शंका के उत्तर में हम यह कहेंगे कि वास्तव में बहुत से ऐसे लोग थे जो पैग़म्बरे इस्लाम द्वारा मोजिज़े के प्रदर्शन और हर प्रकार से अपनी पैग़म्बरी के प्रमाण प्रस्तुत किये जाने के बाद भी बार- बार मोजिज़े और चमत्कार की मांग करते थे और उनमें ज्ञान और विश्वास प्राप्त करने की भावना नहीं होती थी इसी लिए यह कदापि आवश्यक नहीं है कि हर ईश्वरीय दूत लोगों की मांगों पर किसी बाज़ीगर की भांति चमत्कार दिखाने लगे बल्कि जब आवश्यक होता है तब ईश्वरीय दूत चमत्कार दिखाता है। इसी लिए यदि हम आज के युग में कोई असाधारण काम देखें तो उसे मोजिज़ा या चमत्कार उस अर्थ में नहीं कह सकते जिसका वर्णन हमने अपनी आज की और पिछली चर्चाओं में की है।

वास्तव में मोजिज़ा पैग़म्बरों की पैग़म्बरी सिद्ध करने का साधन होता है और अतीत के जिन ईश्वरीय दूतों ने मोजिज़ा या विशेष अर्थ में चमत्कार का प्रदर्शन किया है वह उनके समाज की परिस्थितयों के अनुकूल रहे हैं उदाहरण स्वरूप हज़रत मूसा, जिन्हें यहूदी, ईसाई और मुसलमान ईश्वरीय दूत मानते हैं जिस काल में थे उसमें जादू का अत्यधिक चलन था और उन्हें पराजित करने के लिए मिस्र के शासक फिरऔन ने जिसके बनाए हुए पिरामिड आज के लोगों के आकर्षण का केन्द्र हैं, जादूगरों को बुलाया था। इसी लिए हजरत मूसा को ऐसा चमत्कार दिया गया था जो जादूगरों को असमर्थ करने की क्षमता रखता था या हज़रत ईसा का उदाहरण पेश किया जा सकता है। उनके काल में चिकित्सकों का अत्यधिक सम्मान था इसी लिए उन्हें ऐसा चमत्कार दिया गया जो चिकित्सकों के सामर्थ में नहीं था। या फिर पैग़म्बरे इस्लाम सल्लल्लाहो अलैही व आलेही व सल्लम के काल में साहित्य को अत्याधिक महत्व प्राप्त था और अरब दूसरी भाषा बोलने वाले सभी लोगों को गूंगा कहते थे इस काल में ईश्वर ने उन्हें क़ुरआन जैसा मोजिज़ा प्रदान किया जिसमें बार- बार साहित्यकारों को चुनौती दी गयी है कि वह उस जैसी या उसके किसी एक अंश जैसी रचना करें।

---

नोट:इस को हमनें www.al-shia.orgसे नकल (कापी) किया है। थोड़े से हस्तक्षेप के साथ।

# विषयसूची


सृष्टि, ईश्वर और धर्म ..... 1

सृष्टिकर्ता अनिवार्य है। ..... 2

धर्म क्या है? ..... 10

एकेश्वरवादी धर्म जो वास्तव में सच्चे धर्म हैं तीन आस्थाओं में समान दिखाई देते हैं। ..... 16

जिज्ञासा ..... 20

क्या लोक-परलोक के मध्य कोई संबंध है? ..... 21

परिपूर्णता का मार्ग ..... 26

स्वाभाविक भावना ..... 33

स्वयं को पहचानें किंतु क्यों? ..... 42

नास्तिकता और भौतिकता-१ ..... 48

नास्तिकता व भौतिकता-२ ..... 55

कारक और ईश्वर ..... 62

संभव वस्तु और कारक ..... 68

सबका पालनहार एक है ..... 73

ईश्वर के एक होने के तर्क ..... 79

कर्मो का ज़िम्मेदार मनुष्य ..... 84

मनुष्य और परिपूर्णता ..... 89

महान ईश्वर सर्वज्ञाता है ..... 94

धर्म और भाग्य ..... 101

मनुष्य और उसके कर्म ..... 106

मनुष्य का भाग्य एवं कर्म ..... 112

ईश्वर और न्याय ..... 119

न्याय और उसका अर्थ ..... 124

महान ईश्वर और तत्वज्ञान ..... 129

ईश्वर और उसके दूत ..... 133

ईश्वरीय दूत और अनुसरण ..... 138

ईश्वरीय दूत और आधुनिक प्रगति ..... 144

ईश्वर और उसका ज्ञान ..... 149

संसार में इतने पापी क्यों? ..... 155

ईश्वरीय दूत और पाप ..... 163

हर ग़लती पाप नहीं है ..... 170

चमत्कार एवं ईश्वरीय दूत ..... 184

चमत्कार और उससे संबंधित शंकायें..... 190

विषयसूची..... 195